कालिंजर

शौर्य * स्मारक * मूर्तिशिल्प * साहित्य

डॉ० रुद्र पाण्डेय

कालिंजर

शौर्य * स्मारक * मूर्तिशिल्प * साहित्य

डॉ० रुद्र पाण्डेय

कालिंजर

शौर्य ✲ स्मारक ✲ मूर्तिशिल्प ✲ साहित्य

डॉ॰ रूद्रकिशोर पाण्डेय
एम. ए. पी. एच. डी.
डिप्लोमा संग्रहालय विज्ञान

प्रकाशक :
आदित्य रश्मि प्रकाशन
लश्कर ग्वालियर
मध्य प्रदेश
1991

श्रद्धेय

प्रो. के. पी. नौटियाल

विभागाध्यक्ष

प्राचीन भारतीय इतिहास

संस्कृति एवं पुरातत्व

गढ़वाल विश्वविद्यालय

गढ़वाल श्रीनगर

उत्तर प्रदेश

को

सादर भेंट

- रुद्र पाण्डेय

अग्रसारण

कालिंजर नीलकण्ठ महादेव से सम्बद्ध है अतः प्रारम्भ में शैव तीर्थ के रूप में विख्यात हुआ परन्तु शीघ्र ही "राज्य श्री" का पर्याय बन गया। अश्व हलचल एवं वीर-कलरव से यह भूभाग गुंजायमान हो गया था। कलचुरि, गुर्जर प्रतिहार, चन्देल, मुगल बुन्देला तथा चौबे राजवंशों ने कालक्रमानुसार धर्म शौर्य एवं प्रतिष्ठा के इस संगम पर आकर अपने को धन्य माना।

इस पर्वतीय दुर्ग में स्थान स्थान पर शैल प्राचीरों पर उत्कीर्ण विशाल प्रतिमायें तथा अन्य स्मारक एवं कलाकृतियाँ कालिंजर के गौरवशाली अतीत के दिग्दर्शन में सक्षम हैं। शैव. शाक्त. वैष्णव मूर्तियों के अतिरिक्त जैनधर्म की प्रतिमायें भी यहाँ हैं जो भारतवर्ष की सर्वधर्म समभाव रूपी जीवन सरिता की प्रतीक हैं।

"कालिंजर—शौर्य. स्मारक. मूर्तिशिल्प. साहित्य" में डॉ. रूद्रकिशोर पाण्डेय ने अतीत की बिखरी हुयी श्रृंखला को जोड़ने का प्रयास किया है। इस ग्रन्थ को अग्रसारित करते हुये मुझे हर्ष है, विश्वास है कि यह राष्ट्रीय गौरव को ज्योतिर्मय करने में सफल होगा।

अतुल बगाई
आई. ए. एस
सम्भागीय खाद्यनियंत्रक
संयुक्त विकास आयुक्त
झाँसी मण्डल झाँसी

प्राक्कथन

विन्ध्याचल की सुरम्य पर्वत श्रंखलाओं में स्थित कालिंजर दुर्ग चन्देल साम्राज्य का शक्ति केन्द्र था। यह चन्देल वंश के प्रतापी नरेशों यशोवर्मन, धंग. गंड विद्याधर. के शौर्य का साक्षी है। मुगल बुन्देलों तथा चौबे राजवंश के अधिपत्य में रहने के पश्चात् कालिंजर-दुर्ग ईस्ट इण्डिया कम्पनी एवं ब्रिटिश सरकार के अधिकार में आया था

नीलकण्ठ मंदिर अमानसिंह-महल सीतासेज तथा मृगधारा कालिंजर दुर्ग के दर्शनीय स्थल हैं। इस विशाल पर्वतीय दुर्ग में सर्वत्र बिखरे कला वैभव तथा इसके गौरवशाली अतीत के ज्ञानार्जन हेतु अभाव की अनुभूति की जा रही थी उसकी ओर डॉ. रूद्रकिशोर पाण्डेय की दृष्टि गयी और उनके अथक परिश्रम एवं प्रयासों से यह कृति "कालिंजर शौर्य स्मारक. मूर्तिशिल्प. साहित्य" हमारे पाठकों के समक्ष प्रस्तुत हुई निः संदेह प्रशंसनीय एवं उपयोगी है। मुझे विश्वास है कि यह जिज्ञासु पाठकों की ज्ञान पिपासा तृप्त करने में सफल सिद्ध होगी।

डॉ० सीता राम गुप्ता

—प्राचार्य

लक्ष्मी व्यायाम मंदिर

इन्टर कॉलिज झाँसी

आभार–

"कालिंजर शौर्य* स्मारक** मूर्तिशिल्प* साहित्य" को मूर्तरूप देने में अनेक महानुभावों का मार्गदर्शन एवं प्रोत्साहन प्राप्त हुआ मैं उनका कृतज्ञ हूँ हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ ।

प्रो. बी. बी. लाल पूर्व महानिदेशक भा. पु. सर्वेक्षण प्रो. के. डी. बाजपेयी अध्यक्ष प्रा. भा. इ. सं. पु. सागर वि. वि. सागर डॉ. एस. सी. काला पूर्व निदेशक इलाहाबाद संग्रहालय इलाहाबाद. डॉ. आर. सी. शर्मा, महानिदेशक राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली, डॉ. भूपेशचन्द्र सक्सेना अध्यक्ष इतिहास विभाग मेरठ कॉलेज मेरठ, प्रो. रामाश्रय अवस्थी लखनऊ, डॉ. नरेशचन्द्र बंसल कासगंज, डॉ. आर. ए. अग्रवाल मेरठ से प्राप्त प्रोत्साहन एवं प्रेरणा प्रोत्साहन हेतु आभार व्यक्त करता हूँ

श्री अतुलबगाई सम्भागीय खाद्यनियंत्रक संयुक्त विकास आयुक्त झाँसी मण्डल झाँसी ने इस ग्रन्थ को अग्रसारित करने की कृपा की है मैं उनका कृतज्ञ हूँ ।

श्री सीताराम गुप्त प्राचार्य लक्ष्मी व्यायाम मंदिर झाँसी ने प्राक्कथन लिखकर अनुग्रहित किया है मैं आभारी हूँ ।

डॉ. एस. डी. त्रिवेदी निदेशक इलाहाबाद संग्रहालय इलाहाबाद ने अनेक सुझाव देकर ग्रन्थ को साकार करने में सहयोग दिया मैं उनका आभार व्यक्त करता हूँ।

डॉ. एस. डी. ओझा जिलाधिकारी बाँदा श्री शंकरनाथ अधीक्षण पुरातत्वविद् आगरा श्री एच. के. नारायण अधीक्षण पुरातत्वविद् लखनऊ श्री आर. सी. अग्रवाल अधीक्षण पुरातत्व विद् भोपाल श्री प्रताप भानुसिंहसेंगर उप अधीक्षण पुरातत्वविद् आगरा डॉ. वेन्कटेश सहायक अधीक्षण पुरातत्वविद् झाँसी का मैं प्रोत्साहन हेतु आभार व्यक्त करता हूँ ।

सांस्कृतिक कार्य विभाग उ. प्र. की निदेशक श्रीमती स्तुति नारायण कक्कड़ आई. ए. एस. संयुक्त निदेशक श्री बी. पी. माथुर उपनिदेशक डॉ. ए. के. श्रीवास्तव कालिंजर के चौबेराज परिवार के श्री हेमराज चौबे, चित्रकूट का हार्दिक आभारी हूँ ।

श्री जिन्द्रकुमार निदेशक राजकीय संग्रहालय झाँसी ने मुझे प्रोत्साहित किया मैं आभारी हूँ । डॉ. राकेश तिवारी निदेशक पुरातत्व संगठन उ. प्र. श्रीमती पुष्पा ठकुरैल निदेशक राजकीय संग्रहालय मथुरा श्री रमाशंकर रजिस्ट्रीकरण अधिकारी झाँसी श्री हरीशकुमार चतुर्वेदी रजिस्ट्रीकरण अधिकारी लखनऊ श्री एस. एन. श्रीवास्तव रजिस्ट्रीकरण अधिकारी आगरा एवं डॉ. अजय कुमार पाण्डेय रजिस्ट्रीकरण अधिकारी

बरेली श्री के. डी. मिश्र छाया चित्रकार राजकीय संग्रहालय मथुरा का मैं आभार व्यक्त करता हूँ ।

श्री एल. पी. पाण्डेय उपसंचालक संग्रहालय एवं पुरातत्व ग्वालियर श्री शान्तिचन्द्र द्विवेदी विद्यामंदिर मुरार ग्वालियर श्री हरिमोहन पुरवार निदेशक बुन्देलखण्ड संग्रहालय उरई श्री ओमप्रकाश बंसल एस. एन. इन्डस्ट्रीज झाँसी तथा झाँसी के ही श्री अरूण कुमार जैन अधिवक्ता एवं श्री शाम दमडेरे को धन्यवाद देता हूँ कालिंजर के श्री श्याम बिहारी वैद्य श्री रामबिहारी त्रिवेदी एवं श्री राम आसरे सोनी का आभार व्यक्त करता हूँ ।

डॉ० रूद्रकिशोर पाण्डेय

E 4 न्यु रॉयगंज सीपरी

झाँसी

दीपावली

5-11-91

संकेताक्षर—

ई.	=	ईस्वी
इ. आई	=	इपिग्राफिका इण्डिका
ए. एस. आर.	=	आर्क्योलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट
ए. आर. न.	=	एशियाटिक-एनुअल रजिस्टर नम्बर
मू. सं.	=	मूर्ति संख्या
के. एफ.	=	कालिंजर फोर्ट
मू. सं. के. एफ.	=	मूर्ति संख्या कालिंजर फोर्ट

विषय-सूची

शौर्य

पौराणिक आख्यानों के अनुसार समुद्र-मंथन से प्राप्त विष को देवताओं पर कृपा करते हुये पानकर भगवान शिव ने काल पर विजय प्राप्त की, तत्पश्चात् कालिंजर में विश्राम किया। कालिजर शब्द "कालंजर" का अपभ्रंश है। कालंजर शिव का एक नाम है इस शब्द का अर्थ है मृत्यु को नष्ट करने वाला। इस प्रकार इस स्थल का नाम "कालिजर" स्वयम् यहाँ के महत्व को व्यक्त करता है।

हरीतीमा से परिपूर्ण विन्ध्याचल का यह भूभाग प्रागैतिहासिक काल से ही मानव का क्रीड़ा स्थल रहा है। कालिजर-दुर्ग के निकट प्रवाहित बागें नदी के तट से उच्चपुरापाषाण काल तथा निम्न पुरापाषाण काल के पाषाण उपकरण[1] प्राप्त हुये हैं जो प्रागैतिहासिक मानव को जीवन यापन करने में सहायक थे।

सर्व प्रथम कालिजर ने एक पवित्र तपस्या स्थल के रूप में ख्याति अर्जित की अतः इसका उल्लेख महाकाव्यों, पुराणों तथा प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में धार्मिक संस्कृतिक केन्द्र के रूप में है। रामायण[2] के अनुसार राम ने एक ब्राह्मण को कालिजर के कुलपति के पद पर नियुक्त किया था" महाभारत[3] में कालिजर के देवहृद-सरोवर का उल्लेख है पद्मपुराण[4] में कहा गया है यह स्थान शिव का सान्निध्य प्रदान करने वाला होने के कारण उनके नाम के अनुरूप कालज़र नामसे प्रसिद्ध और मोक्षदायी है भागवत पुराण[5] के अनुसार ब्रह्मा ने सृष्टि के निर्माण हेतु कालिजर-पर्वत पर कठोर तप करके विष्णु को संतुष्ट किया था। मत्स्य पुराण[6] में सती की आज्ञा है – कालिजर-गिरि पर काली के रूप में मेरा ध्यान करना चाहिये।

प्राचीनकाल में "वत्स" भारतवर्ष के सोलह महाजनपदों में से एक था। इसकी राजधानी कौशाम्बी थी कालिंजर वत्स महाजनपद का अंग था। कालान्तर में वत्स मगध साम्राज्य का भाग बन गया। कालिजर भी इस प्रकार मगध साम्राज्य में विलीन हो गया मगध के विशाल साम्राज्य में कालिजर एक तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध हुआ और इसी रूप में नन्द, मौर्य तथा शुंग राजवंशों के द्वारा शासित रहा।

शुंगों के पश्चात् इस क्षेत्र पर मित्र वंशीय राजाओं का शासन प्रारम्भ हुआ कौशाम्बी से मित्र वंश के सिक्के प्राप्त[7] हुए हैं कौशाम्बी से प्राप्त अभिलिखित लालबलुये पत्थरकी बोधिसत्व प्रतिमा[8] पर कुषाण सम्राट कनिष्क प्रथम के शासन के द्वितीय वर्ष की

तिथि अंकित है इससे स्पष्ट है कि मित्रों के पश्चात् यह भूभाग कुषाण साम्राज्य का अंग बन गया था ।

मघ इस भूभाग में कुषाणों के राजनैतिक उत्तराधिकारी थे । मघ नरेशों के सिक्के तथा मोहरें विशद् परिमाण में कौशाम्बी, भीटा तथा औरछा (बांदा जनपद) से प्राप्त[9] हुये हैं । महाराजा शिवमघ का अभिलेख[10] बांधौगढ़ (जनपद शहडोल मध्य प्रदेश) से प्राप्त हुआ है । इससे स्पष्ट होता है कि कालिंजर अपने आसपास के अन्य भू-भागों के सदृश्य मघों के आधीन था ।

मघों के पश्चात इस भू-भाग पर "प्रारम्भिक गुप्त वंश" के राजाओं का अधिपत्य स्थापित हुआ । बांदा जनपद की पैलानी तहसील में इच्छावर ग्राम के समीप धनेसर खेरा के खण्डहरों से बुद्ध[11] की अष्ट धातु की अभिलिखित प्रतिमायें प्राप्त हुयी हैं द्वितीय प्रतिमा के अभिलेख से ज्ञात होता है कि यह "प्रारम्भिक गुप्त वंश के श्री हरिदास की रानी महादेवी का उपहार था । अभिलेख के लक्षण के आधार पर प्रसिद्ध विद्वान स्मिथ ने इसे 400 ईस्वी के बाद का निर्धारित नहीं किया है हरिदास का उल्लेख "प्रारम्भिक" गुप्त" राजाओं के वंश विवरण में है, इसके सिक्के भी प्राप्त हुये है ।

प्रयाग प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि सम्राट समुद्र गुप्त ने सम्पूर्ण भारतवर्ष को अपनी दिग्विजयों से एकता के सूत्र में पिरोया था । इन्हीं अभिलेख से ज्ञात होता है कि आर्यावर्त के प्रथम युद्ध के पश्चात् उसने दक्षिणापथ के राज्यों पर विजय प्राप्त की इसी क्रम में महाकान्तर के व्याघ्रराज का उल्लेख मिलता है । महाकान्तर पूर्वी गोडवाने का वन्य प्रदेश[12] (विन्ध्य का वन्य क्षेत्र) था । आर्यावर्त के द्वितीय युद्ध में समुद्र गुप्त ने कौशाम्बी नरेश रुद्रदेव को परास्त किया था । महाकान्तर एवं कौशाम्बी कालिंजर के इर्द गिर्द के राज्य थे । इससे स्पष्ट होता है कि इन राज्यों के साथ कालिंजर भी गुप्त साम्राज्य में समाहित हो गया था ।

गुप्त साम्राज्य के पतन के साथ ही साथ अनेक लघु राज्यों का जन्म हुआ । कालिंजर के शिलालेख[13] में राजा उदयन का नाम अंकित है जो सम्भवतः पाँचवी शताब्दी के अन्त में यहाँ राज्य करता था ।

606 ई. में हर्ष वर्धन सिंहासना रूढ़[14] हुआ । राजनैतिक उत्कर्ष के परिणाम

स्वरुप उसका साम्राज्य दक्षिण में नर्मदा तट[15] तक विस्तृत हो गया था इस प्रकार कालिंजर उसमें सम्मिलत था।

सम्राट हर्ष की मृत्यु के पश्चात् राजनैतिक अस्थिरता का लाभ उठाते हुये डाहल प्रदेश में त्रिपुरिको केन्द्र बनाकर कलचुरि एक शक्ति के रूप में उभरे। कलचुरी वंश के प्रथम शासक वामराज देव[16] को विद्वानों ने सातवी शताब्दी के अन्त में माना है वामराजदेव महात्वाकांक्षी था उसने डाहल की सीमा पर स्थित कालिंजर पर अधिकार[17] कर लिया था। सामरिक तथा धार्मिक महत्व के कालिंजर क्षेत्र पर आधिकार कर कलचुरियों ने अपनी प्रतिष्ठा में वृद्धि की। इस विजय की मधुर स्मृति को स्थायित्व प्रदान करने हेतु कालान्तर में भी कलचुरि नरेश "कालिंजर पुर वराधीश्वर" का विरूद धारण[18] करते रहे यद्यपि यह भू-भाग प्रतिहारों ने उन से छीन लिया था।

विक्रम सम्वत 1011 के खजुराहो अभिलेख में चन्देलों के प्रथम राजा का नाम नन्नुक[19] आया है। प्रसिद्ध विद्वान कनिंघम ने नन्नुक से छटवीं पीढ़ी में उत्पन्न धंग के उपरोक्त अभिलेख की तिथि (विक्रम सम्वत् 1011=954 ईस्वी) के आधार पर प्रत्येक पीढ़ी के लिये 20—25 वर्ष का समय निर्धारित करते हुये नन्नुक का काल नवीं शताब्दी का प्रथम चरण माना है। जनश्रुतियाँ चन्देल माता हेमवती के पुत्र चन्द्रवर्मन की तिथि 225 सम्वत् मानती है। विद्वानों ने इसे हर्ष सम्वत् माना है। सम्राट हर्ष 606 ई0 में सिंहासनारूढ़ हुआ था इस प्रकार तिथि 606 ईस्वी + 225 हर्ष सम्वत् = 831 ईस्वी निर्धारित होती है। चन्द्रवर्मन नन्नुक की उपाधि थी।

गुर्जर प्रतिहार वंश के प्रतापी नरेश नागभट द्वितीय ने सर्व प्रथम कान्यकुब्ज विजयकर[20] महोदय (कन्नौज) को अपनी राजधानी बनाया था। वराह अभिलेख से ज्ञात होता है कि नागभट द्वितीय ने कालिंजर[21] में दान भी दिया था। उसने यह भूखण्ड कलचुरियों से जीता था और स्थानीय सरदार नन्नुक की सहायता उसे प्राप्त हुयी होगी। विद्वानों ने नन्नुक का विरूद चन्द्रवर्मन माना है जिसकी उत्पत्ति जनश्रुतियों के अनुसार चन्द्रदेव से हुयी थी। लोक साहित्य से ज्ञात होता है कि चन्द्रदेव से वरदान प्राप्तकर चन्देल माता हेमवती कालिंजर[22] आयी थी। वहाँ उसने प्रवासकर पुत्र कामना की इच्छा से देवताओं को मनाया तत्पश्चात् वह कर्णवती (केन नदी) के तट पर चली गयी वहां उसके

पुत्र चन्द्रवर्मन का जन्म हुआ था। चन्द्रवर्मन ने कालिंजर पर अधिकार कर ब्राह्मणों को स्वर्ण मुद्राये दान में दी थी।

जनश्रुतियों एवं लोक साहित्य में अतिश्योक्ति तो अवश्य है परन्तु इतना तो निश्चित है कि प्रारम्भ से ही चन्देल राजवंश का अधिपत्य कालिंजर पर था चाहे इस वंश के प्रारम्भिक शासक प्रतिहारों के समान्त रूप में ही क्यों न रहे हो। विक्रम सम्वत् 1011 के खजुराहो--अभिलेख में नन्नुक की उपाधियाँ नृप एवं महीपत अंकित हैं जो स्पष्ट संकेत है कि वह एक सामान्त था। प्रतीत होता कि गुर्जर प्रतिहार नरेश नागभट द्वितीय ने नन्नुक को कालिंजर का सामान्त शासक नियुक्त किया होगा।

गुर्जर प्रतिहार नरेश राम भद्र (833 ई0—836 ई0.) का शासन काल अशान्तिपूर्ण था। वह अपने पिता नागभट द्वितीय द्वारा कालिजर मण्डल[23] में दिये गये दान को सक्रम न रख सका इससे प्रतीत होता है कि कालिंजर को चन्देलों ने गुर्जर प्रतिहारों से स्वतंत्र करा लिया था। रामभद्र के पुत्र मिहिर भोज (836 ई.—885 ई.) ने अपने पितामह नागभट द्वितीय द्वारा कालिजर में दिये गये दान को पुनः सक्रम घोषित किया इससे स्पष्ट होता है कि मिहिर भोज के नेतृत्व में गुर्जर प्रतिहारों ने पुनः चन्देलों को अपना आधिपत्य स्वीकार करने हेतु विवश किया था।

नन्नुक के पश्चात् कालिंजर उसके पुत्र वाक्पति पौत्रों जयशक्ति तथा विजय शक्ति के अधिपत्य में रहा। जौजा अर्थात जयशक्ति के नाम से उसके राज्य का नाम जौजाक भुक्ति हुआ। विजयशक्ति का पुत्र राहिल (900 ई.—915 ई.) तथा पौत्र हर्ष (915 ई.-—930 ई.) कालिंजराधिपति एवं गुर्जर प्रतिहारों के समान्त[24] बने रहे। राष्ट्रकूट नरेश इन्द्र तृतीय[25] की सेना ने गुर्जर- प्रतिहारों की राजधानी कुशस्थल नाम से प्रसिद्ध महोदय नगर पर भीषण आक्रमण किया। इस युद्ध में गुर्जर-प्रतिहारों को अभूतपूर्व हानि हुयी। शनैः शनैः गुर्जर प्रतिहार नरेश महिपाल प्रथम ने अपनी स्थिति सुदृढ़ की इस कार्य में उसे अपने सामन्तों का महत्वपूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ। खजुराहो अभिलेख[26] से ज्ञात होता हैकि चन्देल नरेश हर्ष ने क्षितिपाल देव को पुनः सिंहासन पर बैठाया था। विद्वानों के अनुसार महिपाल प्रथम ही क्षितिपाल था। इस प्रकार चन्देल राजवंश गुर्जर प्रतिहारों के सामान्त शासकों के रूप में अत्यधिक शक्तिशाली हो गया था उन्होंने कालिंजर को एक सैनिक-छावनी एवं वैभव शाली नगर के रूप में विकसित कर दिया था।

गुर्जर-प्रतिहार नरेश महिपाल प्रथम को अपने जीवन के अंतिम काल में पुनः राष्ट्रकूट आक्रमण का सामना करना पड़ा। राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण तृतीय के देवली[27] (शक-सम्वत् 862 = 940 ई.) तथा कर्हड[28] (शक सम्वत् 880 = 958 ई.) अभिलेखों में उल्लेख है कि अपनी क्रोधपूर्ण दृष्टि मात्र से उसने (कृष्ण तृतीय ने) दक्षिण के (प्रतिहारों के राज्य के) सभी दुर्गों की विजय करली है गुर्जर राजा के मन से कालिंजर और चित्र-कूट के दुर्गों के पुनः प्राप्त होने की आशा समाप्त हो गयी। राष्ट्रकूटों के द्वितीय आक्रमण से गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्य के दक्षिण पश्चिम के क्षेत्र प्रभावित हुये थे। ऐसा प्रतीत होता है कि इस आपत्काल में चन्देलों का शासन कलिंजर से समाप्त हो गया था इसी लिये चन्देल नरेश हर्ष के पुत्र यशोवर्मन ने पुनः कालिंजर पर विजय प्राप्त की। यशोवर्मन की कालिंजर पर विजय का उल्लेख विक्रम सम्वत् 1011 = 953—54 ई. के खजुराहो अभि-लेख[29] में है—

यस्मिन्मध्यन्दिने स्यात्ताराणिरपुदिन नीलकण्ठाधिवासम्।
जग्राह क्रीडया यस्तिलकमिव भवं कालिंजराद्रिस ॥

जिस पर्वत पर मध्यान्ह के सूर्य की तेज धूप सदा पड़ती है और नीलकण्ठ का निवास है। पृथ्वी के तिलक के समान कलिंजर पर्वत को जिसने क्रीड़ा करते हुए अपने आधीन कर लिया था।

विद्वानों में इस बात पर विभिन्न मत है कि यशोवर्मन ने कालिंजर किस राज-वंश से जीता था। सी. वी. वैद्य[30] एवं कनिंघम[31] के मतानुसार उसने कलचुरियों को परास्त करके कालिंजर प्राप्त किया था कलचुरि नरेश कालिंजर पुर वराधीश्वर का विरूद[32] धारण करते थे इसी लिए विद्वानों ने यह मत प्रतिपादित किया है डॉ. मिराशी के अनुसार वामराज-देव ने कालिंजर जीता था वराह अभिलेख से ज्ञात होता है कि नागभट द्वितीय (805 ई.—833 ई.) ने कालिंजर में दान दिया था। नागभट द्वितीय के पौत्र मिहिर भोज ने अपने पितामह द्वारा कालिंजर मण्डल में दिये गये दान को सक्रम किया डॉ. रे. के अनुसार उस समय चन्देलों का राजा जयशक्ति था इससे स्पष्ट होता है कि कालिं-जर कलचुरियों के पास से पूर्व ही निकल गया था और गुर्जर-प्रतिहारों के समान्त शासकों के रूप में यशोवर्मन के पूर्वज कालिंजर में शासन करने लगे थे जहां तक कालिंजर पुर वराधीश्वर उपाधि धारण करने का प्रश्न है उसके सम्बन्ध में यह निश्चित है कि त्रिपुरी के

कलचुरिवंश के प्रथम शासक वामराजदेव ने कालिंजर पर अधिकार कर अपने वंश की प्रतिष्ठा में वृद्धि की थी उसके वंशज इस घटना पर गौरव अनुभव करते हुए यह उपाधि धारणा करते रहे यद्यपि यह दुर्ग उनके अधिकार में पुनः कभी नहीं आया।

डॉ. मिराशी[33] का मत है कि यशोवर्मन ने गुर्जर-प्रतिहारों को परास्त कर कालिंजर पर अधिकार कर लिया था। यह मत पूर्णतः निराधार है प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर यह पूर्णतः स्पष्ट हो गया है कि नन्नुक से हर्ष तक सभी प्रारम्भिक चन्देल शासक[34] गुर्जर प्रतिहारों के आधीन सामन्त शासक थे। हर्ष ने गुर्जर-प्रतिहार नरेश क्षितिपाल देव (महिपाल प्रथम) को पुनः सिंहासन प्राप्त करने में सहायता प्रदान की थी इस स्थिति में यह मत पूर्णतः अमान्य है।

डॉ. हेमचन्द्र राय[35] डॉ. त्रिपाठी[36] डॉ. अल्तेकर[37] तथा डॉ एस. के. मित्रा[38] के मतानुसार यशोवर्मन ने राष्ट्रकूटों को पराजितकर कालिंजर पर अधिकार कर लिया था। इस मत का आधार देवली एवं कर्हड के अभिलेख है। ऐसा प्रतीत होता है कि राष्ट्र कूट आक्रमण से गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्य का चित्रकूट कालिंजर क्षेत्र प्रभावित हुआ था और कालिंजर से उनके सामन्त चन्देलों का शासन समाप्त हो गया अनुकूल परिस्थितियाँ प्राप्त होते ही यशोवर्मन चन्देल ने पुनः कालिंजर पर अधिपत्य स्थापित कर लिया। खजुराहो अभिलेख में भी आया है कि उसने कालिंजर क्रीड़ा करते हुये प्राप्त कर लिया था अर्थात् इस हेतु उसे विशेष शौर्य प्रदर्शन की आवश्यकता नहीं हुयी। ऐसा इसलिये भी सम्भव था क्योंकि राष्ट्रकूटों के शक्ति केन्द्र सुदूर दक्षिण में स्थित थे उत्तर भारत में स्थित नव विजित दुर्ग की रक्षा करने में वे भौगोलिक दूरी के कारण असमर्थ थे इसके विपरीत चन्देल एक स्थानीय शक्ति थे और कालिंजर उनका पारम्परिक केन्द्र था अतः इस कार्य में उसे स्थानीय जनता का भी सहयोग प्राप्त हुआ होगा।

यशोवर्मन के पश्चात् उसका पुत्र धंग सिंहासनारूढ़ हुआ खजुराहो के लक्ष्मण मंदिर से प्राप्त इसके प्रथम अभिलेख[39] में चन्देल साम्राज्य के विस्तार का वर्णन है इसमें कालिंजर का स्पष्ट उल्लेख है कि वह उसके साम्राज्य में था। उसने कालिंजराधिपति की उपाधि धारणकर गर्व का अनुभव किया। इतिहासकार निजामुद्दीन[40] एवं फरिश्ता[41] का कथन है—— दिल्ली, अजमेर, कालिंजर एवं कन्नौज के राजाओ ने 989 ई. के युद्ध में सुबुक्तगीन के विरूद्ध भटिण्डा के शाही नरेश जयपाल को सैनिक सहायता दी थी। यहां

निसंदेह इनका तात्पर्य कालिजर के राजा धंग से है। चन्देलों ने इस सामरिक दुर्ग को विशाल सैनिक छावनी में परिवर्तित कर दिया था और इसका नाम तात्कालीन राष्ट्रीय घटनाओं के साथ सम्बद्ध होने लगा था।

कालिजर नरेश धंग के पुत्र महाराजा गंड[12] ने 1008 ई. में सुल्तान मेहमूद के विरुद्ध जयपाल के उत्तराधिकारी भटिण्डा के राजा आनन्दपाल को सैन्य सहायता प्रदान की थी युद्ध में आनन्दपाल के हाथी बिगड़ जाने से भगदड़ मच गयी और भारतीय सेना असफल हो गयी। इस प्रकार कालिजर भारत के गौरव को सुरक्षित रखने में संघर्षशील था।

गंड के पश्चात उसका पुत्र विद्याधर चन्देलों का राजा बना। भटिण्डा के शाही वंश के पतन के पश्चात मेहमूद-गजनवी ने (1018—19 ई.) में कन्नौज पर आक्रमण किया वहाँ का गुर्जर-प्रतिहार नरेश राजपाल[13] कायर था वह बगैर युद्ध के भाग गया मेहमूद को सुगमता से सफलता प्राप्त हुयी। इस कृत्य से कालिजर नरेश विद्याधर चन्देल के क्रोध का ठिकाना न रहा दण्ड देने के लिये उसने राजपाल पर आक्रकण कर दिया इसके परिणाम स्वरूप राजपाल मारा गया, उसके पुत्र त्रिलोचनपाल को विद्याधर ने कन्नौज का राजा बना दिया। इसकी पुष्ठि कच्छपघातों के दुबकुण्ड अभिलेख[14] एवं चन्देलों के महोबा अभिलेख[15] से होती है। राजपाल की हत्या की सूचना पाकर 1019 ई. में मेहमूद गजनवी ने विद्याधर पर आक्रमण[16] कर दिया। इस युद्ध के विषय में इतिहासकार निजामुद्दीन लिखता है नन्द (विद्याधर) की विशाल सेना देखकर मेहमूद गजनवी घबरा गया और पाश्चाताप करने लगा कि आखिर उसने आक्रमण क्यों किया अन्त में उसने अल्लाह से प्रार्थना की। रात का नन्द के हृदय में भय व्याप्त हो गया और वह बगैर युद्ध के चला-गया। फरिश्ता ने भी विद्याधर के बिना लड़े भाग जाने की बात लिखी है। विदेशी इतिहासकारों के ये विवरण पक्षपातपूर्ण है। इतिहासकार इब्नुल अहतर[17] का विवरण सत्य है जिसके अनुसार मेहमूद गजनवी तथा नन्दा के मध्य पहले तो युद्ध हुआ रात्रि ने दोनो को अलग कर दिया (अर्थात् रात्रि हो जाने से युद्ध बन्द हो गया) दूसरे दिन मेहमूद ने मैदान खाली देखा। प्रतीत होता है कि व्यर्थ में अपनी सेनाकटवाने की अपेक्षा दूसरे मोर्चे के उद्देश्य से विद्याधर रात्रि में अन्यत्र चला गया, यह चन्देलों की रणनीति थी।

413 हिजरी (1022 ई.) में मेहमूद गजनवी ने विद्याधर चन्देल पर पुनः आक्रमण किया। इतिहासकार निजामुद्दीन के अनुसार उसने नन्दा (विद्याधर) के राज्य

में स्थित ग्वालियर के किले पर चढ़ायी की जिसके हाकिम ने चार दिन की घेराबन्दी के पश्चात् हाथियों की भेंट देकर (मेहमूद से) रक्षा की प्रार्थना की। निजामुद्दीन आगे लिखता है कि इसके पश्चात् सारे हिन्दुस्तान में अपनी शक्ति एवं अभेद्यता के लिये प्रसिद्ध कालिंजर-दुर्ग की घेराबन्दी सुल्तान मेहमूद गजनवी ने की जो बहुत समय तक चलती रही अंत में नन्दा[48] ने 300 हाथियों की आधीनता सूचक भेंट देकर सुरक्षा की प्रार्थना की। फरिश्ता के अनुसार राजा (विद्याधर) ने सुल्तान के सैनिकों की बहादुरी के परीक्षण हेतु महावत रहित नशीली औषधियों से मद मस्त हाथियों को सुल्तान के शिविर में भेजा। सुल्तान मेहमूद गजनवी ने जंगली तरीके से बढ़ते हुये हाथियों की स्थिति को अनुभव करते हुये अपनी एक सैनिक टुकड़ी को उन्हें वश में करने का आदेश दिया। इसमें उसके सैनिक सफल रहे। फरिश्ता आगे लिखता है—किले के सैनिक सुल्तान के सैनिकों का पराक्रम देखकर भय अनुभव करने लगे नन्दा (विद्याधर) ने तब सुल्तान की प्रशंसा और उसके सैनिकों की बहादुरी में एक पद्य[39] लुगात-ए- हिन्दुई (भारतीय भाषा) में भेजा प्रत्युत्तर में मेहमूद ने अपनी शुभकामनायें राजा को भेजी तथा दूसरे उपहारों सहित 15 दुर्गो का शासक मान्य किया, नन्दा (विद्याधर) ने भी बहुमूल्य उपहार दिये। इस प्रकार सुल्तान उस स्थान से विजयी होकर लौटा।

उपरोक्त वर्णन विदेशी इतिहासकारों की कृतियों पर आधारित हैं जो निश्चित ही एक पक्षीय हैं। ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि मेहमूद गजनवी का यह अभियान चन्देल नरेश विद्याधर को दण्ड देने हेतु था प्राप्त साक्ष्यों से पुष्ठि होती है कि वह वास्तव में अपने उद्देश्य को प्राप्त करने में असफल रहा। इतिहासकार डॉ. एस. के. मित्रा[50] के अनुसार ग्वालियर एवं कालिंजर दोनो ही दुर्ग अपराजेय रहे और दोनो ही अवसरों पर सुल्तान मेहमूद गजनवी ने औपचारिक निवेदन प्राप्त होते ही घेरा उठा लिया उपहारों का आदान प्रदान हुआ जिसे विदेशी इतिहासकारो ने राज्य कर की संज्ञा दे दी। इस प्रकार चन्देल नरेश विद्याधर ने राजनीति में शीर्ष स्थान प्राप्त कर कालिंजर के शौर्य को प्रतिष्ठित किया और भारत वर्ष का मान बढ़ाया।

विद्याधर के पश्चात् उसका पुत्र विजयपाल (1030 ई.—1060 ई.) एवं पौत्र देववर्मन (1060 ई.) क्रमशः सिंहासनारूढ़ हुये। इनके काल में चन्देल शक्ति का अत्यधिक ह्रास हुआ इसका कारण कर्ण के नेतृत्व में कलचुरियों की साम्राज्यवादी सत्ता का

उदय था। देववर्मन के चरखारी अभिलेख[51] में संसार की नाश्वरता एवं दुखशीलता का वर्णन है जो संकेत करता है कि उसे किसी भीषण विपत्ति का सामना करना पड़ा था। विल्हण के विक्रमांकदेव चरित[52] में लक्ष्मी कर्ण को कालिजर नरेश के लिये मृत्यु समान (कालः कालंजर गिरिपतेर्य) बतलाया गया है चन्देल नरेश देववर्मन के सामन्त गोपाल की प्रशंसा में कृष्ण मिश्र द्वारा रचित प्रवोधचन्द्रोदय नाटक[53] में उल्लेख है—चेदि राजाओं ने चन्द्र राजाओं का वंश उखाड़ फेंका। साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि चन्देल नरेश देववर्मन को कलचुरियों के भीषण आघात सहने पड़े किन्तु कालिजर पर उनका नियंत्रण बना रहा नन्यौरा[54] एवं चरखारी[55] अभिलेख इसकी पुष्ठि करते हैं। इन अभिलेखों में उसका विरूद् कालिजराधिपति अंकित है। देववर्मन के पश्चात् उसका अनुज कीर्तिवर्मन (1060 ई.—1100 ई.) चन्देलों का राजा बना। उसने कलचुरि नरेश लक्ष्मीकर्ण को पराजितकर यश अर्जित किया। सामन्त गोपाल की प्रशंसा में लिखे गये नाटक प्रबोध चन्द्रोदय में उल्लेख है—गोपाल ने चन्देल राजलक्ष्मी को गौरवान्वित किया। इससे स्पष्ट है कि चन्देल शक्ति को पुनः संगठित किया गया था।

कीर्तिवर्मन के पश्चात् क्रमशः सल्लक्षणवर्मन (1100 ई.—1115 ई.) जयवर्मन (1115 ई.—1120 ई.) तथा पृथ्वीवर्मन (1120 ई.—1129 ई.) चन्देलों के राजा हुये और कालिंजर उनके साम्राज्य का किरीट बना रहा।

पृथ्वीवर्मन के पश्चात् उसका पुत्र मदनवर्मन (1129 ई.—1163 ई.) चन्देल सिंहासन पर बैठा यह इस वंश के महान शासकों में से एक था। यशोवर्मन के पश्चात् चन्देल प्रतिष्ठा एवं शक्ति में जो धूमिलता आ गयी थी उसे दूर कर आलोकित करने का कार्य मदनवर्मन ने किया। चौलुक्य नरेश सिद्धराज जयसिंह मालवा पर विजय प्राप्त कर चन्देल साम्राज्य के द्वार पर पहुँच गया था। अनेक अभिलेखों में उसे अवन्तिनाथ[56] कहा गया था। दोनों साम्राज्यों की सीमायें मिलने से चन्देल नरेश मदनवर्मन एवं चौलुक्य नरेश सिद्धराज जयसिंह में संघर्ष हुआ। जैन ग्रन्थ कीर्तिकौमुदी[57] में उल्लेख है कि सिद्धराज मालव राजधानी धारा पर विजय प्राप्त करता हुआ कालिंजर पहुँच गया। कुमारपाल-चरित में आया है कि सिद्धराज जयसिंह ने मदनवर्मन को पराजित किया ततपश्चात् सन्धि हो जाने से शान्ति स्थापित हो गयी। राजशेखर ने अपने प्रबन्ध कोष के मदनवर्मा प्रबन्ध[58] में सिद्धराज जयसिंह एवं मदनवर्मा के साक्षात्कार का जो विवरण दिया है उसमें इन दोनों के मध्य किसी संघर्ष का उल्लेख नहीं मिलता कालिंजर अभिलेख[59] में उल्लेख

है—मदनवर्मन ने गुर्जर नरेश को उसी प्रकार हराया जैसे श्रीकृष्ण ने कंस को हराया था प्राप्त विवरणों से स्पष्ट होता है कि सिद्धराज जयसिंह चन्देलों के साथ अपने युद्ध में सफलता प्राप्त न कर सका और अंत में कालिंजर से अपनी सेना हटाने को विवश हुआ। इस प्रकार मदनवर्मन अपने साम्राज्य की रक्षा में समर्थ हुआ और कालिंजर चन्देलों का मुकुटमणी बना रहा।

मदनवर्मन के पश्चात् उसका पुत्र यशोवर्मन द्वितीय चन्देल सिंहासन पर विराजमान हुआ इसका शासनकाल अत्यंत अल्प था। परमर्दिनदेव (1165 ई. 1202 ई.) अपने पिता यशोवर्मन द्वितीय के पश्चात् शासक बना। पृथ्वीराज-रासो[60] परमालरासो तथा आल्हाखण्ड से ज्ञात होता है कि इस चन्देल नरेश पर अजमेर एवं दिल्ली के प्रतापी चहमानवंशीय राजा पृथ्वीराज तृतीय का भीषण आक्रमण 1182 ई. में हुआ था। परम-र्दिनदेव ने युद्ध की तीव्रता अनुभवकर अपनी कुछ सेना सहित कालिंजर के अभेद्य गिरि-दुर्ग में शरण ली। पृथ्वीराज तृतीय ने चन्देल साम्राज्य के एक विशाल भूभाग सहित महोत्सव नगर (महोबा) पर अधिपत्य[61] स्थापित कर लिया, ततपश्चात् चहमान सेना के एक योद्धा चावण्डराय ने कालिंजर पर आक्रमण किया। चावण्डराय अपने अभियान में सफल हुआ और चन्देल नरेश परमर्दिन देव को बन्दी बनाकर पृथ्वीराज तृतीय के समक्ष प्रस्तुत करने हेतु वापिस आया (पृथ्वीराज रासो यहाँ अचानक समाप्त हो जाता है)। परमाल रासो[62] के अनुसार चौहान सेना द्वारा दुर्ग की लूट के पश्चात् बन्दी रूप में ले जाये जारहे राजा परमाल (परमर्दिन) को आल्हा के पुत्र इन्दल ने स्वतंत्र करवाया था। डॉ. एस. के. मित्रा[63] का मत है कि महोत्सवनगर के घेरे के समय चन्देल प्रशासन कालिंजर में स्थानान्तरित कर दिया गया था। परमाल रासो में आल्हा के पुत्र इन्दल के नेतृत्व में बनाफरों द्वारा परमाल (परमर्दिन) की चहमान सेना से मुक्ति का जो उल्लेख है वह विश्वसनीय है। चन्देल नरेश ने अपनी स्थिति सुदृढ की और शीघ्र ही चहमानों को जैजाक भुक्ति से बाहर कर दिया।

599 हिजरी = 1202 ईस्वी में कुतबुद्दीन[64] ने कालिंजर पर भीषण आक्रमण किया। चन्देल नरेश परमर्दिन ने वीरतापूर्वक सामना किया किन्तु युद्ध लम्बे समय तक चलने से उत्पन्न विषम परिस्थितियो के कारण अंत में समर्पण हेतु वह सहमत हो गया। इतिहासकार-हसननिजामी[65] ने लिखा है— आधीनता की प्रतिज्ञा करने पर उसके लिये

वही अनुग्रह स्वीकृत हुये जैसे कि उसके पूर्वजों को महमूद सुबुक्तगीन से प्राप्त हुये थे। जब परमाल (परमर्दिन देव) कुतबुद्दीन को राज्यकर एवं हाथी देने की तय्यारी कर रहा था उसी समय उसकी मृत्यु हो गयी। परमर्दिन के दीवान अजयदेव ने समर्पण का विचार त्यागकर शौर्यपूर्ण संघर्ष जारी रखा कालिंजर के जलाशय एवं अन्य जलस्त्रोत सूख गये अंततः उन वीर सैनिकों को आत्मोत्सर्ग हेतु दुर्ग के बाहर आना पड़ा। भीषण युद्ध के पश्चात् कुतबुद्दीन को सफलता प्राप्त हुयी उसका अधिपत्य कालिंजर दुर्ग पर स्थापित हो गया। कालिंजर का प्रशासन हजबारूद्दीन हसन अर्नाल[66] को सौप दिया गया। इस प्रकार कालिंजर को दुर्भाग्य का सामना करना पड़ा यह प्रथम अवसर था जब चन्देल राजवंश की सत्ता उनके मूल स्थान कालिंजर से समाप्त हो गयी।

परमर्दिनदेव के पश्चात् उसका पुत्र त्रैलोक्यवर्मन (1203 ई.—1247 ई.) राजसिंहासन पर बैठा। चन्देल शक्ति छिन्न भिन्न थी कालिजर उनसे छिन गया था परन्तु वे समूल नष्ट नहीं हुये थे। त्रैलोक्यवर्मन ने चन्देल राजलक्ष्मी को नवजीवन प्रदान किया उसने शीघ्र ही शक्ति संचितकर कालिंजर पुनः अधिपत्य में लेकर अपने अनुवांशिक विरूद् "कालिंजराधिपति" को न्यायोचित सिद्ध किया। कालिंजर पर चन्देलों के पुनः अधिकार की पुष्ठि त्रैलोक्यवर्मन के ही गर्रा अभिलेख[67] तथा उसके उत्तराधिकारी वीरवर्मन के अजयगढ़ अभिलेख[68] से होती है, इस दुर्ग के तुर्कों के अधिकार से निकलकर चन्देलों के नियन्त्रण में आने का साक्ष्य तबकात-ए-नासिरी[69] में भी इसमेंआया है कि— 631 हिजरी (1233 ईस्वी) में मलिक नुसरूद्दीन ताइशी ग्वालियर से एक सेना लेकर कालिंजर के राजा को पराजित करने हेतु गया, वहाँ के राजा में शत्रु का सामना करने का साहस न था अतः ताइशी को लूट में असीम सम्पदा प्राप्त हुयी। यह मत पूर्णतः अविश्वसनीय है कि चन्देलों ने दुश्मन का सामना नहीं किया था।

तबकात-ए-नासिरी[70] में ही आया है कि—सुल्तान नसीरूद्दीन के काल में हिजरी 645 (1247 ई.) में कारा (इलाहाबाद जनपद) के निकट पर्वतीय क्षेत्र में शासन कर रहे डलाकी मलाकी को उलवखान ने लूटा था। इतिहासकार फरिश्ता लिखता है डलाकी मलाकी कालिंजर[71] में निवास करते थे। पुरातत्ववेत्ता कनिंघम[72] के अनुसार राजा का सही मूल नाम तिलाकी वामदेव (त्रैलोक्यवर्मन वामदेव) था। जो फारसी लेखकों ने अशुद्ध कर डलाकी मलाकी लिखा था। कनिंघम के मत को स्वीकार करने से निश्चित होता है कि त्रैलोक्यवर्मन 1247 ई. तक कालिंजर पर राज्य करता रहा था परन्तु प्रश्न

उत्पन्न होता है कि क्या 1233 ई. में कालिजर पतन के पश्चात् त्रैलोक्यवर्मन ने उसे पुनः एक बार जीता था ? डॉ. एस. के. मित्र[73] ने मत व्यक्त किया है कि यह पूर्णरूपेण सम्भव है कि ताइशी ने कालिजर को लूटा जो वास्तव में जीता नहीं गया था और चन्देलों ने इस पर से अधिकार नहीं खोया था।

त्रैलोक्य वर्मन के पश्चात् वीर वर्मन (1260 ई0-1286 ई0) भोज वर्मन (1286 ई.-1288ई.) क्रमशः चन्देलों के सिंहासन पर आरूढ़ हुये। चरखारी अभिलेख[74] से ज्ञात होता है कि विक्रम सम्वत् 1346 (1289 ई.) में हमीर वर्मन चन्देलों का राजा बना था उसकी उपाधि अभिलेख में कालिजराधिपति अंकित है।

ग्राम सलइया से विक्रम सम्वत् 1366 (1309 ई.) का अभिलेख[75] प्राप्त हुआ है इसमें सुल्तान अलाउद्दीन का उल्लेख सार्वभौम राजा के रूप में किया गया है इससे स्पष्ट होता है कि इस काल में चन्देलों की स्वतन्त्र सत्ता समाप्त हो चुकी थी यद्यपि वे स्थानीय शासकों के रूप में राज्य कर रहे थे। हमीर वर्मन के पश्चात् शशांक भूप (विक्रम सम्वत् 1387) भिलमादेव (विक्रम सम्वत् 1403) तथा परमर्दिन देव द्वितीय (विक्रम सम्वत् 1447) क्रमशः चन्देल राजवंश[76] के सिंहासन पर आसीन हुये तथा कालिजर सतत् इनके अधिपत्य में बना रहा।

परमर्दिन देव द्वितीय के लगभग सौ वर्ष पश्चात् के चन्देल नरेश कीरत सिंह का उल्लेख प्राप्त होता है यह चन्देल राजवंश का अंतिम कालिजर ,नरेश था। परमर्दिन देव द्वितीय से कीरतसिंह के मध्य के राजाओं के नाम ज्ञात नहीं हैं।

मुगल शहजादे हुमायूँ ने 1531 ई. में कालिजर[77] का घेरा डाला परन्तु अपने पिता की गम्भीर अस्वस्थता के समाचार ने उसे शीघ्र लौटने हेतु विवश किया। अपने पिता के निधन के पश्चात् वह सिंहासनारूढ़ हुआ और उसने 1531 ई. में पुनः कालिजर पर आक्रमण किया। इस बार भी उसे गंगा के पूर्व में अफगानों के विद्रोह के कारण शीघ्र वापिस जाना पड़ा। अकबरनामा तथा तबकाते-अकबरी[78] के अनुसार हुमायूँ ने कालिजर के राजा के समक्ष सन्धि प्रस्ताव रखा। जिसे राजा ने सहर्ष स्वीकार कर हुमायूँ को दो मन स्वर्ण एवं अन्य बहुमूल्य उपहार प्रदान किये। अफगान विद्रोह के कारण हुमायूँ की स्थिति नाजुक थी अतः यह संभव प्रतीत नहीं होता कि कालिजर जैसे सुदृढ़ दुर्ग के राजा ने इतना धन उसे अत्यंत सरलता से प्रदान कर दिया होगा। वास्तव में हुमायूँ इस अभियान में असफल रहा। हुमायूँ ने 1542 ई. में पुनः

कालिंजर हस्तगत करने का प्रयास किया। द्वितीय आक्रमण में ही उसे दोमन स्वर्ण एवं बहुमूल्य उपहार प्राप्त हो गये होते तो वह कालिंजर पर तृतीय आक्रमण न करता। हुमायूँ अपने तृतीय अभियान में भी असफल रहा तथा कालिंजर चन्देलों को गौरव प्रदान करता रहा।

अफगान सम्राट शेरशाह सूरी ने 1545 ई0 में कालिंजर पर आक्रमण किया चन्देल नरेश कीरतसिंह ने दुश्मन का शौर्यपूर्ण स्वागत किया। तवारीखे शेरशाही[79] के अनुसार उसने कालिंजर के किले के सम्मुख ऊँचे-ऊँचे मचान बनवाये, मचानों की ऊँचाई इतनी थी कि किला उनकी अपेक्षा नीचा दिखाई देने लगा इन मचानों से अफगान सैनिकों ने गोलों और तीरों की वर्षा दुर्ग पर कर दी। कालिंजर के उन्नत पर्वतीय दुर्ग के सम्मुख मचान बनाना असम्भव है वास्तव में यहां तवारीखे शेरशाही के लेखक का तात्पर्य दुर्ग के बराबर की ऊँचाई वाले स्थान से है, इस दुर्ग के समीप कालिंजरी नामक पहाड़ी है अफगान तोपखाना वहाँ स्थापित किया गया था।

इस आक्रमण का दुर्ग पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। चन्देल नरेश कीरतसिंह के अन्तःपुर की एक सुन्दर नर्तकी की प्रशंसा[80] शेरशाह ने सुनरखी थी वह उसे प्राप्त करने हेतु आतुर था। शेरशाह को भय था कि अत्यधिक तीव्र आक्रमण करने से कहीं जौहर में वह सुन्दरी भष्म न हो जाये यद्यपि अफगानसेना के साथ आये मुस्लिम धर्माचार्य उसे बार बार धर्मयुद्ध के लिये विवशकर रहे थे।

हिजरी सम्वत् 952 के माह रवी उलअव्वल 9 शुक्रवार को शेरशाह[81] बारूद से भरे आग्निवाणों का निरीक्षण कर रहा था उसके सैनिक दुर्ग पर अग्निवाण फेंकने में व्यस्त थे दैवयोग से बारूद से भरा हुआ अग्निवाण दुर्ग प्राचीर से टकराकर घूमते हुये उस स्थान पर आ गिरा जिस स्थल पर अग्निवाणों का भण्डार था। इसके परिणाम स्वरुप भीषण विस्फोट हुआ और शेरशाह बुरी तरह जल गया। उसने इच्छा व्यक्त की कि—मेरे जीवन के अंतिम समय तक किले पर नियंत्रण हो जाना चाहिये। अपने बादशाह की अंतिम इच्छा पूर्ण करने हेतु अफगान सैनिकों ने किले पर भीषण आक्रमण कर दिया चन्देल सैनिक भी प्रणपण से अपने शौर्य का प्रदर्शन कर रहे थे परन्तु संसाधनों की उनके पास कमी थी। अस्र नमाज के वक्त जैसे ही शेरशाह को कालिंजर विजय की सूचना[82] दी गयी उसका मुखमण्डल हर्ष एवं आनन्द से चमकने लगा। अगले दिन सूर्योदय के

समय चन्देल राजा कीरतसिह बन्दी बना लिया गया। हिजरी 952 रवीउल अव्वल की 10 तारीख (मई 1545 ई.) को शेरशाह कीमृत्यु हो गयी। रविउल अव्वल माह की 17 तारीख को शेरशाह का पुत्र जलाज कालिंजर के दुर्ग में इस्लामशाह[83] के नाम से सिंहासनारूढ़ हुआ। मखजन-ए-अफगाना[84] के लेखक नेमत उल्लाह ने लिखा है कि गद्दी पर बैठते ही इस्लामशाह ने चन्देल राजा कीरतसिंह को मार देने का आदेश दिया। इस युद्ध में कीरतसिंह और उसकी सेना ने अफगानों से वीरता पूर्वक संघर्ष किया परन्तु संसाधनों की कमी से वे असफल हुये वह अंतिम चन्देल राजा[85] था इसके पश्चात् कालिंजर दुर्ग सदैव के लिये चन्देलों के हाथ से निकल गया।

तात्कालीन राजनैनिक स्थिति पर विचार करने से ज्ञात होता है कि वह भारत वर्ष की प्रभुसत्ता हेतु अफगान तथा मुगलों में संघर्ष का काल था। शेरशाह जैसे महान सेनानायक को खोकर अफगान श्रीहीन हो गये तथा मुगलों के सामने न ठहर सके अंततः अफगानों को उत्तर त्यागकर पूर्वी भारत के क्षेत्र में सीमित होने के लिये विवश होना पड़ा हुमायुं के पुत्र अकबर ने उत्तर भारत में मुगलसाम्राज्य का शनैः शनैः विस्तार किया। कालिंजर पर विजय प्राप्त करने हेतु अकबर ने मजनूखान काकशाल[86] के नृतत्व में एक विशाल मुगलसेना भेजी। यह दुर्ग उस समय राजा रामचन्द्र के अधिपत्य में था। राजा ने एक दिन के घेरे के पश्चात् ही दुर्ग के द्वार मुगलों के लिये खोल दिये। बहुमूल्य हीरेजवाहरात सहित दुर्ग की स्वर्ण चाबी[87] भी राजा रामचन्द्र ने मुगल सेनापति को भेट की। भारत के शौर्य के प्रतीक कालिंजर दुर्ग पर मुगलों के अधिपत्य[88] का समाचार सम्राट अकबर को 11 अगस्त 1569 ई. को प्राप्त हुआ राजा रामचन्द्र को इलाहाबाद के समीप जागीर प्राप्त हुयी। मजनूखान काकशाल कालिंजर का किलेदार[89] नियुक्त किया गया। राजा रामचन्द्र एक कायर शासक था उसने वीर राजपूतों की परम्परा का पालन नहीं किया। उसके द्वारा कालिंजर दुर्ग इस प्रकार मुगलों को समर्पित करने का तात्कालीन जन मानस पर विपरीत प्रभाव पड़ा एक लोकगीत में इस कायरतापूर्ण कृत्य[90] हेतु राजा रामचन्द्र की तीव्र भर्त्सना की गयी थी।

सम्राट अकबर ने अपने नवरत्नों में से एक राजा बीरबल[91] को यह दुर्ग जागीर के रूप में प्रदान किया जहाँगीर तथा शाहजहां के काल में कालिंजर मुगल साम्राज्य का अंग बना रहा। औरंगजेब के काल में कालिंजर दुर्ग पर बुन्देलों ने भीषण आक्रमण किया उस समय करम इलाही यहाँ का किलेदार था। महाराजा छत्रसाल की बुन्देला सेना 18

दिन तक दुर्ग को घेरे रही अंत में बुन्देलों की घेराबन्दी हटाने हेतु मुगलसेना विवश होकर दुर्ग से बाहर आयी। घमासान युद्ध[92] के पश्चात बुन्देला विजयी हुये। महाराजा छत्रसाल ने मान्धाता चौबे[93] को कालिंजर का दुर्गपति नियुक्त किया।

महाराजा छत्रसाल ने अपनें बाहुबल से एक विशाल राज्य का निर्माण किया। इलाहाबाद के मुगल सूबेदार मोहम्मदखान बंगश ने 1729 ई. में छत्रसाल पर आक्रमण किया। छत्रसाल की यह वृद्धावस्था थी अतः उन्होंने अपने को असहाय अनुभव करते हुये मराठा पेशवा बाजीराव प्रथम से सहायता प्राप्त की। पेशवा ने मुगलों को छत्रसाल के राज्य से खदेड़ दिया कृतज्ञ छत्रसाल बाजीराव प्रथम को पुत्रवत् स्नेह करने लगे। मृत्यु पूर्व छत्रसाल ने अपना राज्य तीन भागों में विभाजित कर दिया था। इनमें एक भाग पेशवा बाजीराव प्रथम को प्राप्त हुआ शेष दोनो क्रमशः पन्ना राज्य एवं जैतपुर राज्य कहलाये। हृदयशाह को पन्ना राज्य एवं जगत राज को जैतपुर राज्य प्राप्त हुआ ये दोनो छत्रसाल के पुत्र थे। इस विभाजन के फलस्वरूप कालिंजर पन्नाराज्य का अंग[94] बन गया और चौबे परिवार पूर्ववत् इसका दुर्गपति बना रहा।

पन्ना राज्य के शासक छत्रसाल के प्रपौत्र राजा हिन्दुपत की मृत्यु 4 दिसम्बर 1776 ई. को हो गयी। पटरानी से उत्पन्न उनका पुत्र अनिरूद्धसिंह राजा बना यद्यपि वह द्वितीय पुत्र था, ज्येष्ठपुत्र सरनेत की माता छोटी रानी थी अतः उसे सिंहासन से वंचित रहना पड़ा राजा अनिरूद्धसिंह 1780 ई. में स्वर्गवासी हो गया ततपश्चात मृत राजा के बड़े भाई सरनेतसिंह एवं छोटे भाई धोकलसिंह में सत्ता प्राप्त करने हेतु संघर्ष हुआ इस संघर्ष में सरनेत सिंह ने कालिंजर[95] के दुर्गपति कायम जी चौबे का समर्थन प्राप्त किया इससे ज्ञात होता है कि कालिंजर को स्थानीय राजनीति में पुनः विशिष्ट स्थान प्राप्त हो गया था कायम जी चौबे ने तरौंहा के निकट दुर्गाताल[96] के युद्ध में धोकलसिंह के समर्थक बेनी हजूरी को परास्त कर दिया कालिंजर के इस वीर केलेदार की मृत्यु दिसम्बर 1786 ई. में हो गयी थी ततपश्चात् उसका पुत्र रामकिशन चौबे कालिंजर का किलेदार बना।

अलीबहादुर पेशवा बाजीराव प्रथम का पौत्र था। उसका पिता शमशेर बहादुर बाजीराव प्रथम तथा मस्तानी का पुत्र था। मस्तानी बाजीराव की प्रेयसी थी जो उसे महाराजा छत्रसाल से राज्य के एक भाग के साथ ही प्राप्त हुयी थी। छत्रसाल से बुन्देलखण्ड के कुछ भूभाग प्राप्त हो जाने से मराठों का प्रभाव यहाँ बढ़ने लगा। अपने हितों के संरक्षण हेतु मराठा शासन ने अलीबहादुर को बुन्देलखण्ड भेजा।

अलीबहादुर अत्यंत महात्वाकांक्षी था उसने आते ही छत्रसाल के वंशज बाँदा के अल्पवयस्क राजा बख्तसिंह पर आक्रमण कर किया। राजा बख्तसिंह का संरक्षक नौने अर्जुनसिंह अजयगढ़[97] के समीप अलीबहादुर से शौर्य पूर्ण युद्ध करते हुये 18 अप्रेल 1792 ई. को वीरगति प्राप्त हुआ। अलीबहादुर ने अजयगढ़ पर अधिकार कर बाँदा को अपनी राजधानी बनाया तथा बांदा के नवाब की उपाधिधारण की। इस प्रकार बाँदा में नवावशाही का सूत्रपात हुआ। अलीबहादुर को इतने से संतोष न था अतः उसने जैतपुर, चरखारी, विजावर, पन्ना तथा रीवा के राजाओं पर आक्रमणकर धन वसूल किया। बाँदा के समीप स्थित कालिंजर के सामरिक महत्व को दृष्टिगत रखते हुये उसने वहाँ आक्रमण कर दिया।

कालिंजर क्षेत्र के ग्रामों में नवाब अलीवहादुर ने लूटमार प्रारम्भ कर दी। कालिंजर के दुर्गपति रामकिशन चौबे से नवाव अलीबहादुर दो कारणों से क्रुद्ध था—प्रथम तो नवाब को चौबे ने राज्यकर नहीं दिया था, द्वितीय नवाव अलीबहादुर के द्वारा नष्ट किये गये राज्यों के बुन्देला राजाओं को परिवार सहित रामकिशन चौबे ने कालिंजर दुर्ग में आश्रय दे रखा था। इस प्रकार महाराजा छत्रसाल के वंशज बुन्देला राजपरिवारों को आपात्काल में कालिंजर दुर्ग ने सुरक्षित रखा। रामकिशन चौबे ने दिसम्बर 1798 ई. में अपना वकील नवाव अलीवहादुर के पास भेजा। वकील ने स्पष्ट किया चौबे राज्यकर देने के लिये तैय्यार है परन्तु बुन्देला राज परिवारों को कालिंजर दुर्ग से नहीं निकाला जा सकता क्यों कि इन परिवारों से उनके घनिष्ठ मैत्री सम्बन्ध पूर्वजों के काल से ही हैं। नवाबअलीबहादुर कालिंजर के ग्रामों की लूटपाट इस शर्त पर बन्द करने हेतु रजामंद हो गया कि चौबे उसे पाँचलाख रूपये नजराने के साथ तीस हजार रूपये की एक अतिरिक्त रकम भेट करे। चौबे ने इतनी बड़ी रकम[98] देना अस्वीकार कर दिया परिणाम स्वरूप अलीबहादुर ने कालिंजर का घेरा डाल दिया।

कालिंजर का दुर्गपति रामकिशन चौबे अत्यंत स्वाभिमानी एवं साहसी व्यक्ति था उसने अपने दुर्ग के सामरिक महत्व का लाभ उठाते हुये नवाव के सभी प्रयत्न विफलकर दिये तथा कालिंजर की प्राचीन शौर्य परम्परा को आलोकित किया कालिंजर का घेरा लम्बे समय तक चलता रहा अतः नवाव ने समीपस्थ ग्राम तिरहुती में अपने लिये स्थायी आवास का निर्माण करवाया। रामकिशन चौबे ने अपनी सुरक्षा व्यवस्था को सदैव सुदृढ़ रखा। कह

जाता है कि जब नवाब ने चौबे के पास बार-बार समर्पणकर किला सौंपने के प्रस्ताव भेजे तो रामकिशन चौबे ने नवाब के पास आम की गुठली भेज दी और नवाब के प्रस्तावों पर हास्य करते हुये संदेश भेजा कि नवाब इस गुठली को पहले जमीन में बो दें, इससे उत्पन्न वृक्ष में जब फल लगने लगें तब उन आमों सहित नवाब अलीबहादुर कालिंजर दुर्ग के समर्पण का प्रस्ताव प्रेषित करें उस समय मैं उन को चूसता हुआ उनके प्रस्ताव पर विचार करूंगा। वह समय कभी नहीं आया क्योंकि नवाब अलीबहादुर अचानक अस्वस्थ हो गया और 28 अगस्त 1802 ई. को उसकी मृत्यु[99] हो गयी। रामकृष्ण चौबे का उपरोक्त प्रस्ताव उसकी दृढ़ इच्छा शक्ति एवं साहस का परिचायक है।

नवाब अलीबहादुर के दो पुत्र थे---शमशेर बहादुर द्वितीय तथा जुल्फिकार अली ये दोनो सौतेले भाई थे। जुल्फिकार अली[100] का जन्म 1800 ई. में हुआ था। पिता की मृत्यु के समय शिशु जुल्फिकारअली कालिंजर में ही था जबकि ज्येष्ठ पुत्र शमशेर बहादुर द्वितीय पूना में था। मृत नवाबअली बहादुर के भाई गनी बहादुर एवं सेनानायक हिम्मत बहादुर गोसांई ने सत्ता हस्तगत करने हेतु दो वर्षीय शिशु जुल्फिकारअली को बाँदा का नवाब घोषित कर दिया। कालिंजर का अभियान यथावत चलता रहा। पिता की मृत्यु का समाचार प्राप्त होते ही शमशेर बहादुर पूना से 1803 ई. में कालिंजर[101] पहुँच गया आते ही उसने सेना का नेतृत्व सम्भाला तथा अपने को बाँदा का नवाब घोषित कर दिया नवाब शमशेर बहादुर द्वितीय ने चाचा गनीबहादुर को अजयगढ़-दुर्ग में कैद कर उसकी समस्त सम्पत्ति अपने राजकोष में जमाकरवादी। नवाब शमशेर बहादुर द्वितीय के कृत्यों से सेनानायक हिम्मत बहादुर गोसांई सावधान हो गया तथा उसने अपने हितों के संरक्षण हेतु ईस्ट इण्डिया कम्पनी से सन्धि करली। हिम्मत बहादुर गोसांई के साथ सन्धिकर 6 दिसम्बर 1803 ई. को ईस्ट इण्डिया कम्पनी के लेफ्टीनेन्ट कर्नल पावेल की सेना ने राजापुर घाट से यमुना पारकर बुन्देलखण्ड[102] में प्रवेश किया। अंग्रेजी सेना के यमुना पार करते ही हिम्मत बहादुर गोसांई नवाब शमशेर बहादुर द्वितीय को धोखा देकर भाग निकला तथा अपनी सेनासहित लेफ्टीनेन्ट कर्नल पावेल से जा मिला। नवाब शमशेर-बहादुर द्वितीय की स्थिति नाजुक हो गयी अतः वह कालिंजर का घेरा उठाकर राजधानी बाँदा की सुरक्षा हेतु चला गया। कालिंजर इस झन्झावात से पूर्णतः मुक्त हो गया।

इस बीच हिम्मत बहादुर गोसांई एवं लेफ्टीनेन्ट पावेल ने बांदा पर अधिकार कर लिया। पेशवा बाजीराव द्वितीय एवं ईस्ट इण्डिया कम्पनी के मध्य 31 दिसम्वर

1802 ई. को वेसीन की सन्धि हुई इसकी पूरक सन्धि पर 1803 ई. को पूना में हस्ताक्षर हुये। इस सन्धि से ईस्ट इण्डिया कम्पनी को पेशवा के राजनैतिक उत्तराधिकारी' के रूप में मराठा साम्राज्य संचालन के सूत्र प्राप्त हो गये। इसके पश्चात् बाँदा के नवाब शमशेर बहादुर द्वितीय के पास ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रस्ताव को स्वीकार करने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं रहा। चार लाख रुपये वार्षिक पेन्शन के वास्ते नवाब ने अपने सभी राजनैतिक अधिकार त्याग दिये। इस प्रकार बाँदा में कम्पनी राज्य स्थापित हो गया यद्यपि शमशेर बहादुर द्वितीय के वंशज औपचारिक रूप से नवाब का विरुद् धारण करते रहे।

बाँदा पर अधिपत्य स्थापित करने के पश्चात् अंग्रेजों ने उसके आसपास के भूभाग पर भी अधिकार कर लिया परन्तु कलिंजर अभी स्वतन्त्र था। अंग्रेजों की सशस्त्र सेना ने कर्नल कॉर्टिन्डल[104] के नेतृत्व में 1812 ई. के जनवरी माह में कालिंजर अभियान प्रारम्भ किया। कालिंजर का महान दुर्गपति राम किशन चौबे स्वर्गवासी हो गया था तथा दुर्ग उसके पुत्रों के अधिकार[105] में था। रामकिशन के ज्येष्ठ पुत्र बलदेव का देहावसान हो चुका था अन्य पुत्र दरयावसिंह, गोविन्ददास गंगाधर, नवल किशोर सालिगराम तथा छत्रसाल विद्यमान थे। इनमें दरयावसिंह दुर्गपति था। कालिंजर के अजेय दुर्ग ने अपनी भौगोलिक विशेषताओं के कारण इस नवीन शत्रु को सफल न होने दिया परन्तु रामकिशन चौबे जैसा शौर्य उसके पुत्रों में नहीं था तथा दुर्गरक्षक अंग्रेजी सेना के युद्ध कौशल से भी प्रभावित हुये अतः दरयावसिंह चौबे ने अंग्रेजों के सन्धि प्रस्ताव को स्वीकार लिया। सन्धि की शर्त के अनुरूप चौबे परिवार को पचहत्तर हजार रुपये राजस्व की जागीर[106] प्राप्त हुयी। इस जागीर में पालदेव, सराव, पहरा तथा भैसौंदा ग्राम सम्मिलित थे।

कालिंजर बांदा जनपद में विलीन कर सैनिक छावनी बना दिया गया। अंग्रेजों ने 1835 ई. में पश्चिमोत्तर प्रदेश का गठन किया आगरा उसकी राजधानी बनाया गया। बांदा जनपद पश्चिमोत्तर प्रदेश[107] का अंग बना। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के तत्कालीन साम्राज्य का उत्तर पश्चिमी भूभाग होने के कारण इस नवीन प्रान्त को यह नाम प्राप्त हुआ था।

1857 ई. में प्रथम स्वतन्त्र संग्राम में बांदा के भूतपूर्व नवाब के बंशज नवाब अलीबहादुर द्वितीय ने क्रान्तिकारियों का नेतृत्व किया। स्वातंत्र्य समर के समय पन्ना

की सेना कालिंजर की सुरक्षा कर रही थी शीघ्र ही बारहवीं पैदल बंगाल सेना का लेफ्टीनेन्ट रेमिंगटन सेना सहित इस दुर्ग में पहुँच गया। स्वातंत्र्य समर में सम्पूर्ण बांदा जनपद से अंग्रेजों के शासन का अंत हो गया परन्तु कालिंजर में अंग्रेजी सेना थी अतः इसे स्वतंत्र करवाने हेतु नवाब अलीबहादुर द्वितीय ने दुर्ग का घेरा डाला। इसी समय समाचार मिला कि मेजर जनरल व्हिटलॉक दक्षिण पश्चिम से बांदा की ओर बढ़ रहा है अतः नवाब बाँदा की सुरक्षा हेतु कालिंजर अभियान[108] स्थगित कर बाँदा चला गया।

प्रथम स्वातंत्र्य युद्ध के पश्चात् भारतवर्ष में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के स्थान पर ब्रिटिश साम्राज्ञी रानी विक्टोरिया का शासन प्रत्यक्ष रूप से स्थापित हो गया। पश्चिमोत्तर प्रदेश का पुनर्गठन कर नवीन प्रदेश का निर्माण हुआ जो संयुक्त प्रान्त (आगरा एवं अवध) कहलाता था। बाँदा जनपद कालिंजर सहित संयुक्त प्रान्त में सम्मिलित किया गया।

स्वतंत्र भारत में संयुक्त प्रान्त का नामकरण उत्तर प्रदेश हुआ, युगों-युगों से स्वाभिमान एवं शौर्य का संदेश देने वाला कालिंजर दुर्ग इसके बाँदा जनपद में विद्यमान है।

संदर्भ :

1— पन्त पी. सी. प्री हिस्टोरिक उत्तर प्रदेश पृ. 122

2— बाल्मीक रामायण 7 प्रशिप्त 2/39

3— महाभारत वनपर्व श्लोक सं. 56-57

4— पद्मपुराण प्रथम अध्याय श्लोक सं. 51-53

5— भागवतपुराण षष्ठ स्कंध श्लोक सं. 20—21

6— मत्स्यपुराण तेरहवां अध्यास

7— निगम एम. एल. कल्चरल हिस्ट्री ऑफ बुन्देलखण्ड पृ. 31

8— वही पृ. 31

9 — वही पृ॰ 36

10 - एन्शेन्ट इण्डिया भाग 21 पृ. 184

11— निगम एम. एल. कल्चरल हिस्ट्री ऑफ बुन्देलखण्ड पृ. 41

12— लुणियां बी. एन. गुप्त-साम्राज्य का सांस्कृतिक एवं राजनैतिक इतिहास पृ. 168
13— इ. आई. भाग 4 पृ. 257
14— भारतीय इतिहास कोष पृ. 492
15— पाठक विशुद्धानन्द उत्तर भारत का राजनैतिक इतिहास पृ. 54
16 शर्मा आर. के. कलचुरीज एण्ड देयर टाइम्स पृ. 9
17— मीराशी वी. वी. कार्पस जिल्दचार भूमिका पृ. 68
18— इ. आई. भाग 18 पृ. 209
19— पाठक विशुद्धानन्द उत्तर भारत का राजनैतिक इतिहास पृ. 377.
20— वही पृ. 134
21— इ. आई. (वराह अभिलेख) भाग 19 पृ. 15-16
22— महोबा खण्ड (चन्द्र ब्रह्म उत्पत्ति) खण्ड पृ. 124
23— इ. आई. (वराह अभिलेख) भाग 19 पृ. 15-16
24— पाठक विशुद्धानन्द उत्तर भारत का राजनैतिक इतिहास पृ. 379
25— इ. आई. (खम्भात अभिलेख) भाग 7 पृ. 38
26— इ. आई. भाग पृ. 122
27— वही भाग 5 पृ. 188-197 (देवली अभिलेख)
28-- वही भाग 4 पृ. 278
29— वही भाग 1 पृ. 126 (खजुराहो अभिलेख)
30— वैद्य सी. वी. हिस्ट्री ऑफ मीडिएवल इण्डिया भाग 2 पृ. 126
31— कनिंघम ए. क्वॉइन्स ऑफ मीडिएवल इण्डिया पृ. 67-68
32— मीराशी वी. वी. क्रॉर्पस इन्स्क्रिप्शनम इण्डीकेरम 4 पृ. 68
33— वही पृ. 75
34 — पाठक विशुद्धानन्द उत्तर भारत का राजनैतिक इतिहास पृ. 379
रायहेमचन्द्र—डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नॉर्थइण्डिया भाग 2 पृ. 2668-670
35 — वही पृ. 674
36— त्रिपाठी आर. एस. हिस्ट्री ऑफ कन्नौज पृ. 271
37— तल्तेकर ए. एस.—राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स पृ. 113
38— मित्रा एस. के.—अर्लीरूलर्स ऑफ खजुराहो पृ. 41

39— इ. आई. भाग 1 पृ. 129-134
40— तबकात-ए-अकबरी पृ. 3
41— तबकात-ए-फरिश्ता (बर्गीज) पृ. 18
42— वही पृ. 18
43— पाठक विशुद्धानन्द उत्तर भारत का राजनैतिक इतिहास पृ. 405
44— इ. आई. भाग 2 पृ. 237 (दुबकुण्ड अभिलेख)
45— इ. आई. भाग 1 पृ. 20 (महोबा अभिलेख)
46— पाठक विशुद्धानन्द उत्तर भारत का राजनैतिक इतिहास पृ. 408
47— रायहेमन्द्र—डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नॉर्थइण्डिया भाग दो पृ. 691
48— तबकात-ए-अकबरी पृ. 14
49— तबकात जैनुल अखबार पृ. 79-80
50— मित्रा एस. के. अर्ली रूलर्स ऑफ खजुराहो पृ. 82
51— इ. आई. भाग 20 पृ. 125-128
52— विक्रमांकदेव चरितम (ब्हूलर द्वारा सम्पादित) 18 वॉ श्लोक पृ. 93
53— प्रबोध चन्द्रोदय (निर्णय सागर प्रेस) पृ. 19
54— द इण्डियन एन्टीक्वेरी भाग 17 पृ. 205-207
55— इ. आई. भाग 20 पृ. 125-128
56— जर्नल ऑफ द रॉयल एशियाटिक सोसायटी पृ. 322
57— बॉम्बे गजेटियर भाग 1 पृ. 178-79
58— सिन्धी जैन ग्रन्थमाला में प्रकाशित 1935 पृ. 90-93
59— जर्नल ऑफ द एशियाटिक सोसायटी बेंगाल 17 पृ. 318
60— पृथ्वीराज रासो(सम्पादक एम. वी. पाण्डवीय तथा एस. एस. दास बनारस 1913)
61— एस. आर. 10 पृ. 98-99 मदनपुर अभिलेख
62— परमाल रासो अंतिम खण्ड पृ. 532-53
63— मित्रा एस. के. अर्ली रूलर्स ऑफ खजुराहो पृ. 125
64— वही पृ. 125
65= वही
66— इलिएट-हिस्टोरियन्स हिस्ट्री ऑफ इण्डिया पार्ट 2 पृ. 231

67 — इ. आई. 16 पृ. 272-77
68— इ. आई. 1 पृ. 321-23
69— तवकात ए. नासिरी पार्ट फर्स्ट पृ. 732
70— वही पृ. 680-83
71— तवकात-ए-फरिश्ता पार्ट फर्स्ट पृ. 237
72— ए. एस. आर. 1 पृ. 457
73— मित्रा एस. के. अर्ली रूलर्स ऑफ खजुराहो पृ. 124
74— इ. आई. 20 पृ. 134-36
75— इ. आई. 17 पृ. 11 फुटनोट 182
76— तिवारी गोरेलाल बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास पृ. 43
77— पॉग्सन डब्लू. आर. हिस्ट्री ऑफ बुन्देलाज पृ. 166
78— विलियम इरस्किन हिस्ट्री ऑफ इण्डिया पृ. 9 फुट नोट
79— अब्बास सरवानी तवारीखे शेरशाही पृ. 173-174
80— वही पृ. 175
मुनीलाल, अकबर पृ. 152
81— अब्बास शरवानी तवारीखे शेरशाही पृ. 174-175
82— वही पृ. 176
83— पॉग्सन डब्लू. आर. हिस्ट्री ऑफ बुन्देलाज पृ. 163
84— अब्बास शरवानी तवारीखे शेरशाही पृ. 176 फुट नोट
85— तिवारी गोरेलाल बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास पृ. 61
86— स्मिथ वी. ए. अकबर द ग्रेट मुगल पृ. 72
87— मुनीलाल अकबर पृ. 153
88— वही पृ. 154
89— स्मिथ वी. ए. अकबर द. ग्रेट मुगल पृ. 72
90— मुनीलाल अकबर पृ. 154
91— स्मिथ वी. ए. अकबर द. ग्रेट मुगल पृ. 72 फुट नोट
92— पॉग्सन डब्लू. आर. हिस्ट्री ऑफ बुन्देलाज पृ. 67
93— त्रिपाठी सोमदत्त, शक्तिपुत्र छत्रसाल पृ. 158

94— पॉग्सन डब्लू. आर. हिस्ट्री ऑफ बुन्देलाज पृ. 105
95— वही पृ. 106
तिवारी गोरेलाल, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास पृ. 231
पन्ना गजेटियर पृ. 11-13
96— पॉग्सन डब्लू. आर. हिस्ट्री ऑफ बुन्देलाज पृ. 113
97— वही पृ. 119
तिवारी गोरेलाल, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास पृ. 274
98— न्यूज लेटर्स ए. आर. नं. 7822
99— पॉग्सन डब्लू. आर. हिस्ट्री ऑफ बुन्देलाज पृ. 122
तिवारी गोरेलाल, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास पृ. 278
100— पॉग्सन डब्लू. आर. हिस्ट्री ऑफ बुन्देलाज पृ. 122
101— वही पृ. 123
102 एशियाटिक एनुअल रजिस्टर 1805 पृ. 59
103 जेम्स जी. डी. हिस्ट्री ऑफ मराठाज वाँ 2 पृ. 268
104 पॉग्सन डब्लू. आर. हिस्ट्री ऑफ बुन्देलाज पृ. 139-42
105 तिवारी गोरेलाल बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास पृ. 300
106 पॉग्सन डब्लू. आर. हिस्ट्री ऑफ बुन्देलाज पृ. 106
107 तिवारी गोरेलाल, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास पृ. 340
108 जॉन स्मिथ फ्रैड्रिकमुलर, रिवैलियस रानी पृ. 106

स्मारक

कालिंजर दुर्ग – दुर्ग विन्यास. नीलकण्ठमंदिर. मृगधारा. सीतासेज. सरोवर. प्रासाद. कालिंजर नगर – नगर की संरचना एवं प्रशासनिक महत्व. वन खण्डेश्वर. सुरसरिगंगा

कालिंजरदुर्ग–

दुर्ग विन्यास

विन्ध्याचल की पर्वत श्रृंखलाओं में स्थित कालिंजर दुर्ग के पश्चिम में यमुना की सहायक नदी बागें प्रवाहित है। इसकी भौगोलिक[1] स्थिति 25° 23/N अक्षांश तथा 80° 25/E देशान्तर है। कालिंजर दुर्ग की सागर-तल से ऊँचाई लगभग 381/.25 मीटर है तथा निकटवर्ती धरातल से 213.5 मीटर हैं। यह उत्तर प्रदेश के बांदा जनपद की नरैनी तहसील का अंग है।

प्रारम्भ में इस स्थल की प्रसिद्धि पवित्र तीर्थ के रूप में हुयी ततपश्चात इसने राजनैतिक प्रतिष्ठा प्राप्त की। पुरातात्विक एवं अभिलेखीय साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि – कालिंजर दुर्ग का निर्माण कम से कम ईस्वी शताब्दी के प्रारम्भ होने के पूर्व हो गया था।

एक सम्पूर्ण पर्वत को सुरक्षा प्राचीरों की सात पंक्तियों से परिवेष्ठित कर दुर्ग का स्वपरूप प्रदान किया गया था। आंतरिक सुरक्षा प्राचीर लगभग पांच मीटर चौड़ी है। दुर्ग में प्रवेश हेतु मुख्य मार्ग कालिंजर ग्राम की ओर से है तथा दूसरा मार्ग पन्ना द्वार था जो वर्तमान में बन्द है। मुख्य मार्ग पर सुरक्षा व्यवस्था सुनिश्चित करने हेतु सात द्वार है-

(1) आंलमगीर द्वार–

फारसी अभिलेख[2] से ज्ञात होता है कि इस प्रथम द्वार का निर्माण मुहम्मद मुराद ने मुगल बादशाह औरंगजेब के काल में करवाया था। औरंगजेब की उपाधि "आलमगीर" के नाम से ही यह द्वार प्रसिद्ध है।

(2) गणेश द्वार– यहाँ चतुर्भजी गणेश पतिमा प्रतिष्ठित है। राजपूतकाल में यह ही प्रथम द्वार था।

(3) चौबुर्जी द्वार– तीर्थ यात्रियों द्वारा उत्कीर्ण अनेक अभिलेख यहाँ है। प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता कनिंघम[3] को यहाँ उत्तर गुप्तकालीन लिपि में अभिलेख प्राप्त हुआ था।

(4) बुद्ध द्वार– बुद्धग्रह के नाम से यह द्वार जाना जाता है।

(5) हनुमानद्वार-रामभक्त हनुमान की प्रतिमा यहाँ विद्यमान है अतः यह हनुमान द्वार है

(6) लाल दरवाजा– इसके समीप भैरवकुण्ड है जहाँ सप्त, मातृका समूह, लिंग, मुख-

लिंग तथा अन्य कलाकृतियाँ विशाल शिलाखण्डों पर उत्कीर्ण है। उच्च पर्वतीय शिला पर भैरव का अंकन था जो कुछ वर्ष पूर्व पलटकर कुण्ठ में गिर गया है। यहाँ बंहगी पुरुष का भी अंकन है इसके निकट गुप्तकालीन ब्राह्मीलिपि में अभिलेख है– "समाधिगत पंचमहासब्द सामन्त श्री वसंत"। इस द्वार के निकट सोलह पंक्तियों का अभिलेख शिला[4] पर उत्कीर्ण है, जिसकी चौथी पंक्ति में कालिंजराद्री अर्थात् कालिंजर-पर्वत पढ़ा गया है।
(7) बड़ा दरवाजा – यहाँ के अभिलेख[5] से ज्ञात होता है सम्वत् 1691 = 1634 ईस्वी में इस द्वार का निर्माण हुआ था।

बड़ा दरवाजा दर्शक को कालिंजर दुर्ग के विशाल परिसर में प्रवेश प्रदान करता है जहाँ स्थान स्थान पर अतीत विश्राम कर रहा है।

नीलकण्ठ मंदिर –

यह शिवालय कालिंजर दुर्ग के पश्चिमी कोण में स्थित है। इसमें अर्धमण्डप, मण्डप, लघु अन्तराल ततपश्चात् गर्भग्रह है। गुप्तकाल में पर्वत को काटकर इस मंदिर के गर्भग्रह का निर्माण किया गया था। गर्भग्रह के द्वार स्तम्भ पर लतापत्र तथा नदी देवियों-गंगा यमुना का अंकन है। वृत्ताकार गर्भग्रह के पृष्ठभाग में अत्यंत सकरा प्रदक्षिणा पथ है। गर्भग्रह में एक किनारे पर विशाल एक मुखी शिवलिंग है। गर्भग्रह के अर्धस्तम्भों पर शिवलिंग ऋषियों तथा भक्तों का शिल्पांकन है।

चतुष्कोणीय विशाल स्तम्भों पर आधारित मण्डप के मध्य में स्तम्भों द्वारा अष्टकोणीय रचना निर्मित की गयी है। इन स्तम्भों पर शिवगण, द्वारपाल तथा कलाभिप्रायों का सुन्दर अंकन है ये चन्देलकाल की उत्कृष्ट कलाकृतियाँ हैं। मण्डप तथा गर्भग्रह के मध्य स्तम्भों पर आधारित लघु अन्तराल है। अर्धमण्डप के मात्र दो स्तम्भ अवशिष्ट हैं। अर्धमण्डप तथा मण्डप के वितान ध्वस्त हो गये हैं। जगत-कल्याणार्थ समुद्र मंथन से उत्पन्न विष को धारणकर नीलकण्ठ के नाम से विख्यात महादेव का यह मंदिर कालिंजर का मुख्य पूजास्थल है।

नीलकण्ठ मंदिर के स्तम्भ पर अंकित अभिलेख[6] से ज्ञात होता है कि यहाँ का महाप्रतिहारी संग्रामसिंह था। इसी अभिलेख में महानाचनी पद्मावती का उल्लेख है। यह अभिलेख सम्वत् 1186 = 1129 ईस्वी अर्थात् चन्देल महाराजा मदनवर्मन के काल का है तथा "श्री नीलकण्ठम् नित्यं प्रणमति" से प्रारम्भ है। इस अभिलेख से ज्ञात होता है कि

चन्देलकाल में कालिंजर के नीलकण्ठ मंदिर का अद्वितोय महत्व था इसकी व्यवस्था हेतु विशेष प्रवन्ध था और संग्रामसिंह मुख्य प्रतिहारी (प्रवन्धक) था। पद्‌मावती की उपाधि 'महानाचनी'' स्पष्ट करती है कि शिवालय में देव को प्रसन्न करने हेतु नृत्याँगनायें नियुक्त थीं तथा पद्‌मावती उनमें प्रमुख थी। राजकीय मंदिरों में नृत्यागनाओं की नियुक्ति भक्ति-भाव के प्रसार हेतु पूजा के एक अंग के रुप में करने की परम्परा मध्यकाल में सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रचलित थी।

नीलकण्ठ मंदिर से आसपास स्थान स्थान पर उत्कीर्ण लघु शैल मंदिरों में तथा शिलाओं पर शिव के मुखलिंग, सामान्य लिंग गणेश तथा शिव भक्तों का रूपायन है।

मृगधारा

हरवंश पुराण[7] के अनुसार कुशिक ने अपने सातपुत्रों को उनके आचरण से क्रोधित होकर घर से निष्कासित कर दिया था। वे महर्षि गर्ग के यहाँ रहने लगे। असत्य भाषण एवं मांसभक्षण के कारण महर्षि गर्ग के शाप से कुशिक पुत्र मृग बनकर कालिंजर गिरि पर रहने लगे। इस पुण्य क्षेत्र में वास करने तथा सत्कर्मों से उनका उद्धार हो गया था।

उपरोक्त पौराणिक कथा के संदर्भ में कालिंजर दुर्ग के दक्षिणी भाग में मृगों का सुन्दर अंकन शिलाखण्ड पर किया गया है। इसके समीप जलस्रोत है जो इसके नाम मृगधारा को सार्थक करता है। यहाँ गुप्तकालीन ब्राह्मी लिपि में अंकित लघु अभिलेख हैं जो गुप्तकाल के तीर्थ यात्रियों ने उत्कीर्ण करवाये थे।

सीतासेज

गुहामंदिर तथा इसके अंदर सुन्दर शैय्या का निर्माण चन्देलकाल में पर्वत को उत्कीर्णकर किया गया था। इसके समीप शैव प्रतिमायें तथा विष्णु के दसावतार अंकित हैं यहाँ पातालगंगा के नाम से विख्यात गहरा कूप है।

सरोवर-

कालिंजर दुर्ग का सबसे विशाल सरोवर कोटितीर्थ है इसके तट पर गुप्त प्रति-हार तथा चन्देल काल के अनेक देवालय थे जो आक्रांताओं की धर्मान्धता का शिकार हो गये मंदिरों के अवशेषों से निकट ही मस्जिद का निर्माण हुआ था। कोटितीर्थ के पश्चिमी तट पर कालिंजर के किलेदार चौबे परिवार द्वारा निर्मित मंदिर हैं।

कोटितीर्थ के अतिरिक्त कालिंजर दुर्ग में बुढ़ियाताल, पाण्डुकुण्ड, रामकटोरा तथा शनिकुण्ड नामक सरोवर हैं जो दुर्ग की जलापूर्ति के अतिरिक्त धार्मिक महत्व भी रखते थे। चन्देल नरेश कार्तिवर्मन ने बुढियाताल का निर्माण करवाया था इसमें स्नान करने से ही वह कुष्ट रोग से मुक्त हुआ था।

प्रासाद–

कोटितीर्थ सरोवर के दक्षिणी किनारे पर एक भव्य प्रासाद है महाराजा छत्र-साल के वंशज पन्ना नरेश के नाम से इसे "अमानसिंह महल" कहा जाता है। महाराजा अमानसिंह प्रजावत्सल थे लोकगीतों के माध्यम से जनसाधारण आज भी इन्हें याद करता है "कहाँ गये राजा अमान वन की रोवेंचिरईयाँ"। दो मंजिल का यह प्रासाद बुन्देला स्थापत्य का उत्कृष्ट उदाहरण है चूने पर सुन्दर पच्चीकारी एवं अलंकरण बनाकर इसे अलंकृत किया गया था। कालिंजर की कलाकृतियों का विशद् परिमाण में संग्रह भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा इसी महल में किया गया है।

कालिंजर दुर्ग में मोतीमहल, खजाना-महल, आदि अन्य लघु परन्तु कलात्मक प्रासाद भी हैं जो चौबे काल में निर्मित किये गये थे।

कालिंजर नगर–

नगर की संरचना एवं प्रशासनिक महत्व–

कालिंजर चन्देल राजवंश का मूल स्थान था। प्रथम चन्देल नरेश नन्नुक (चन्द्रवर्मन) के काल से लेकर इस वंश के अंतिम नरेश कीरतसिंह तक कालिं-जर सदैव उनके साम्राज्य का मुकटमणि बना रहा। अजयगढ़ अभिलेख[8] से ज्ञात है कि तरकारिका ग्राम के वास्तव कायस्थ परिवार के महेश्वर को पिपलाहिका ग्राम कालिंजर के "विशिष" की उपाधि सहित प्रदान किया गया था। यह नवीन पद नाम था जो अन्य अभिलेखों में नहीं मिलता सम्भवतः यह कालिंजर से सम्बन्धित प्रशासनिक पद था कालिंजर चन्देलों की महत्वपूर्ण सैनिक छावनी तथा नगर था अतः इस पद का औचित्य एवं महत्व स्वतः सिद्ध होता है।

चन्देलकालीन कालिंजर परकोटों तथा बुर्जो से सुरक्षित नगर था। वर्तमान में यह ग्राम में परिवर्तित हो गया है जो गिरि-दुर्ग की तलहटी में बसा हुआ है।

वनखण्डेश्वर

वनखण्डेश्वर में भव्य ओपदार-शिवलिंग है। समीप ही विशालशिला पर महिषासुर मर्दिनी उसके पृष्ठ में एक मुखीशिवलिंग तथा बंहगी पुरुष का अंकन है।

सुरसरिगंगा

दुर्ग की तलहटोमें सुरसरिगंगा कालिंजर का महत्वपूर्ण सरोवर है इसे गंगासागर भी कहते है। सरोवर के तट बन्धों के सहारे शेषशायी बिष्णु गणेश तथा अन्य देव प्रतिमायें लगी हैं। इर्दगिर्द भी खण्डित देवप्रतिमायें एवं स्थापत्यीय खण्ड बिखरे हुये हैं जो संकेत करते है कि यहाँ मंदिर थे जो विधर्मी आक्रमणकारियों के वहशीपन का शिकार हो गये थे।

संदर्भ

(1) राजेन्द्रसिंह लेख– तीर्थक्षेत्र कालिंजर एक भौगोलिक अध्ययन, बुन्देलखण्ड महाविद्यालय झाँसी (वार्षिक पत्रिका 1983)

(2) ए. एस. आर. 21 पृ. 29

(3) वही

(4) वही 21 पृ. 30

(5) वही 21 पृ. 30

(6) ए. एस. आर. 21 पृ. 34

(7) हरवंशपुराण अध्याय 21 श्लोक 24---26

(8) इ. आई. 1 पृ. 330

मूर्तिशिल्प-

कालिंजर में कला की विशेषतायें* शिवलिंग* नन्दिकेश्वर-शिवगण* वृषभारूढ़लिंग* भैरव* चामुण्डा* गरूणारूढ़ विष्ण* उमामहेश्वर* गणेश* युगल* योगी* नृत्यसंगीत* गज शार्दूल ।

कालिंजर में कला की विशेषतायें-

(1) मुखाकृतियाँ प्रायः अण्डाकार हैं जो ठोड़ी पर कुछ नुकीलापन लिये हुये हैं ।

(2) नेत्र गोल हैं ।

(3) भौह लम्बी वक्राकार रेखा के रूप में प्रदर्शित हैं ।

(4) ओठ मोटे हैं ।

(5) ग्रीवा पर तीन य चार गरारे दिखाये गये हैं ।

(6) आभूषण पर्याप्त हैं ।

(7) बहुसंख्यक प्रतिमायें शिलाखण्डों, पर्वतीय सतहों पर उत्कीर्ण हैं ।

शिवलिंग

लिंग

कालिंजर के गिरिदुर्ग में स्थान स्थान पर पूर्णतः सामान्य लिंग उत्कीर्ण हैं । ऐसे लिंग भी प्राप्त हुये हैं जिनमें तीन भाग जो ब्रह्मा विष्णु एवं महेश के प्रतीक हैं क्रमशः चतुष्कोणीय अष्टकोणीय एवं वृत्ताकार दर्शाये गये हैं इन्हें जलहरी में स्थापित किया गया था जो शक्ति का प्रतीक है ।

पंचवृत्तलिंग

शिव के पाँच स्वरूपों सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरूष तथा ईशान का अंकन कालिंजर में पांच समान आकार के वृत्तों के रूप में प्राप्त हुआ है । आधार पर चार वृत्तों के ऊपर पाँचवा वृत्त स्थापित किया गया है ।

सहस्त्रलिंग-

विभिन्न विशेषताओं के अनुरूप शिव के एक सहस्त्र नाम पुराणों में उल्लेखित हैं । एक लिंग पर सभी नामों के प्रतिनिधिस्वरूप एक सहस्त्र लघुलिंग[1] उत्कीर्ण करने की परम्परा कालिंजर में अत्यधिक लोकप्रिय थी ।

मुखलिंग—

कालिंजर में एक मुखलिंग का "एक प्रकार" विशेष लोकप्रिय था इसमें शिव की अवक्ष प्रतिमा निर्मितकर शिरोभाग को उन्नत बनाकर लिंगाकृति में परिवर्तित किया गयाहै इस प्रकार के विशिष्ट मुखलिंग मात्र इस गिरिदुर्ग में ही हैं अतः इन्हें कालिंजर शैली के मुखलिंग[2] कहा जाये तो अतिश्योक्ति न होगी नीलकण्ठमंदिर क्षेत्र के गुहामंदिरों एवं शिलाखण्डों पर विशेष रूप से ये रूपायित हैं।

चतुर्मुखलिंग भी कालिंजर में प्राप्त हुये हैं इनमें अमानसिंह महल के सम्मुख कोटितीर्थ सरोवर के तट पर रखा हुआ भव्य चतुर्मुख लिंग[3] अत्यंत महत्वपूर्ण है। चारो दिशाओं में एक एक मानव मुखमणि अलंकृत जटामुकुट एवं त्रिनेत्र सहित प्रदर्शित है। लिंग का सर्वोच्च भाग पूर्णतः गोल एवं ऊँचा है। इसमें शास्त्रानुसार शिव के चार स्वरूपों सद्योजात, वामदेव, तत्पुरुष तथा अघोर मुखमण्डल के रूप में अंकित हैं। शिव का पाँचवा स्वरूप ईशान रूपमण्डन के अनुसार व्यक्त नहीं होता अतः यहाँ पाँचवा मुख अंकित नहीं हैं एवं लिंग का सर्वोच्च भाग ही ईशान का प्रतीक हैं।

नन्दिकेश्वर-शिवगण-

नन्दिकेश्वर शिव का प्रतिहारी है। कालिंजर दुर्ग स्थित नीलकण्ठ मंदिर के स्तम्भ पर नन्दीमुख नन्दिकेश्वर[4] अलंकरणों से अलंकृत रूपायित हैं। भुजायें खण्डित हैं। अन्य शिवगण भी अंकित है। ये अंकन लता पत्रों के मध्य हैं।

वृष भारूढ़ लिंग-

आकर्षक नन्दी[5] दांये पैर पर अपना मुख रखे सुखासन में विश्राम कर रहा है इसकी पीठ पर ऊपर शिवलिंग है। नन्दी को पट्टियों के अलंकरण से सजाया गया है। गले में घन्टी एवं पैरों में कड़े है। शिवपुराण[6] में शिव के सहस्र नामों में एक नाम है "नन्दी स्कन्धधरः अर्थात् नन्दी की पीठ पर सवार होने वाले। कालिंजर में इसी रूप का अंकन वृषभारुढ़ लिंग के रूप में स्थान स्थान पर किया गया है। मानवीय रूप में शिव नन्दी पर विराजमान सर्वत्र दर्शनीय है परन्तु शिवलिंग का वृषभ पर विराजमान प्रदर्शित करना कालिंजर की विशिष्टता है जो अन्यत्र नहीं हैं।

भैरव

शिव के वीभत्स स्वरूप भैरव की विशिष्ट प्रतिमायें कालिंजर के पर्वतीय दुर्ग में विभिन्न स्थलों पर विद्यमान है।

नृत्य भैरव –

गजचर्म प्रभामण्डल की भाँति सुशोभित है बाइस भुजी देव[7] नृत्य कर रहे हैं। दाहिने बाँये एक एक हाथ से वे गजचर्म के सिरों को पकड़े हैं। सभी हाथ विभिन्न प्रकार के आयुध पकड़े नृत्यमुद्राओं में अंकित हैं। दाहिनी ओर के हाथों में छुरिका डमरू. त्रिशूल, खड्ग, तलवार पाश है एक हाथ अक्षमाला सहित अभयमुद्रा में है। तीन हाथ खण्डित हैं। बांयी ओर के हाथों में ढाल. अंकुश. खट्वांग. धनुष. बाण. पुष्प. नरमुण्ड वे धारण किये है अन्य हाथ खण्डित हैं। मस्तक उत्तुंग जटामुकुट नरमुण्ड तथा अर्धचन्द्र से अलंकृत है। देव श्मश्रुधारी एवं ऊर्ध्वरेतस हैं। नृत्य भैरव हार. कुण्डल. अंगद. कंकण कटिसूत्र. नूपुर तथा नरमुण्डों की वनमाला से अलंकृत हैं। यह प्रतिमा लगभग बारहवीं शताब्दी की है। दाहिनी ओर भक्त तथा बांयी ओर वाहन नन्दी उत्कीर्ण है।

वटुक भैरव-

वटुक अर्थात् ब्रह्मचारी भैरव के अनेक अंकन कालिंजर में है। षठ्भुजी श्मश्रुधारी भैरव[8] के केश ऊपर की ओर इस प्रकार बंधे हैं कि प्रभामण्डल बन गया है। दाहिने हाथों में तलवार, घन्टी है एक हाथ खण्डित है बांयी ओर के हाथों में ढाल, खप्पर है तथा एक हाथ खण्डित है। पारम्परिक आभूषणों से अलंकृत देव नरमुण्ड वनमाला धारण किये है वटुक भैरव का वाहन श्वान एवं एक भक्त नमस्कार मुद्रा में नीचे दाहिनी ओर अंकित हैं। यह अंकन भी लगभग बारहवीं शताब्दी का है।

काल भैरव

कलिंजर दुर्ग में नीलकण्ठ मंदिर के बांयी ओर पर्वतीय प्राचीर पर काल भैरव[9] की विशाल प्रतिमा रूपायित है। अट्ठारह भुजीदेव डमरू. तलवार. बीजपूरक. अंकुश. कटार. खप्पर. खट्वांग. ढाल. परशु. धनुष. नरमुण्ड. सर्प तथा अक्षमाला धारण किये हैं। एक हाथ अभयमुद्रा में है। मस्तक के पीछे गजचर्म प्रभामण्डल से सदृश्य प्रसारित है जिसे वे दांये बांये एक एक हाथ से पकड़े हैं देव के मस्तक पर सुन्दर चन्द्रांकित जटामुकट है। मुखमण्डल[10] वीभत्स, त्रिनेत्र युक्त तथा श्मसु (दाढ़ी) सहित भव्य स्वरूप में प्रदर्शित है। सर्पाभूषण तथा नरमुण्ड वनमाला से अलंकृत कालभैरव बाघाम्बर धारण किये हुये भी नग्न एवं ऊर्ध्वलिंग हैं। काल भैरव का यह विराटरूप भक्त के हृदय में भय एवं श्रद्धा एक साथ उत्पन्न करने में सक्षम है। यह अंकन दसवीं ग्यारहवीं शताब्दी का है।

चामुण्डा-

कंकालमयी बीस भुजी देवी चामुण्डा[11] का मुखमण्डल अत्यंत वीभत्स है। दांयी ओर के इनके हाथों में खड्ग. डमरू. मुशल वाण अंकुश है एक हाथ में खप्पर था। अन्य हाथ खण्डित हैं वायी ओर के हाथों में ढाल खेटक पाश धनुष तथा दण्ड हैं अन्य हाथ खण्डित है। दाहिने एवं बांये एक एक हाथ से देवी अपने शीशपर प्रसारित गज चर्म को सम्हाले हैं। शिल्पशास्त्र के ग्रन्थ रूपमण्डन के निर्देशों को पालन करते हुये चामुण्डा का यह अंकन कृशोदर एवं वीभत्स रूपायित किया गया है। इसके समीप नृसिंह प्रतिमा और उसका अभिलेख उत्कीर्ण है अभिलेख सम्वत् 1192 = 1135 ई. का है। दोनो प्रतिमायें नृसिंह एवं चामुण्डा शैली के अनुसार एक जैसी हैं अतः यह अंकन बारहवीं शताब्दी का है

गरूणारूढ़ विष्णु-

अत्यंत सुन्दर देव[12] किरीट मुकुट हार माला यज्ञोपवीत अंगद कटिसूत्र से अलंकृत गरूण पर आसीन है इनके हाथ एवं पैर खण्डित हैं। गरूण मानवरूप में है श्रम-सुधारी एवं अलंकरणों से सुशोभित है।

ऊमा-महेश्वर-

शिव[13] अर्धपर्यंकासन में विराजमान है उनका दाहिना चरण नन्दी की पीठ पर स्थित है। देव की बांयी जंघा पर पार्वती अर्धपर्यंकासन में विराजमान है बांया चरण वाहनसिंह की पीठ पर स्थिर है। शिव के दाहिने हाथ में बीजपूरक है अतिरिक्त दाहिने हाथ में वे त्रिशूल पकड़े हैं। बांये हाथ से देव पार्वती को आलिंगनकर रहे हैं अतिरिक्त बांये हाथ में त्रिफणसर्प है। देवी देव की ओर निहार रही है इनके बांये हाथ में दर्पण है दाहिने हाथ मे वे शिव को आलिंगन कर रही है। देव एवं देवी पारम्परिक आभूषणों से विभूषित हैं। नन्दी एवं सिंह के मध्य शिव भक्त भृंगी रूपायित है।

गणेश-

नीलकण्ठ क्षेत्र के गणेश[14] उच्चकोटि के कलात्मक सौन्दर्य से परिपूर्ण हैं। दाहिने पैर पर सम्पूर्ण शरीर का भार डाले वे खड़े हैं। सभी भुजायें खण्डित हैं। वाम स्कन्ध पर सर्प लटक रहा है क्योंकि वे शिवपुत्र हैं। किरीट मुकुट. हार एकावली अंगद मुक्ता कटिसूत्र तथा नूपुर से गणेण विभूषित है। बांयी ओर वाहनमूषक है। यहाँ गणेश गजमुख सूर्पकर्ण एवं लम्बोदर अंकित हैं जो एक विशिष्टता है। यह लगभग ग्यारहवीं शताब्दी की प्रतिमा है।

युगल-

इस शैव तीर्थ में जैन प्रतिमायें--तीर्थंकर एवं युगल भी प्राप्त हुये हैं। कालिंजर के पंचायत ग्रह की युगल प्रतिमा[15] उल्लेखनीय है। पति पत्नी त्रिभंग मुद्रा में पारम्परिक आभूषणों से अलंकृत खड़े है। दोनों के मध्य स्थित वृक्ष पर तीर्थंकर पद्मासन में विराजमान हैं। दोनों ओर एक एक भक्त तथा पादपीठ पर सप्त आश्वारोही हैं। जैन मत के अनुसार युगल से सृष्टि प्रारम्भ हुयी है।

योगी-

देव प्रतिमाओं के अतिरिक्त कालिंजर में योगियों के भी विशिष्ट अंकन विद्यमान हैं। विशिष्ट जटाभार (चपटा जूड़ा) एवं श्रमसु से अलंकृत योगी[16] पद्मासन में बैठा है। दाहिने हाथ की उंगलियों से माला के मनकों पर मंत्र जप कर रहा हैं बांया हाथ माला को नीचे से सहारा दिये था जो खण्डित है। वामस्कन्ध पर ढक्कनदार विशेष प्रकार का कमण्डलु लटक रहा हैं।

नृत्य संगीत-

गतिशील अंकन में मजीरा वादक एवं मृदंक वादक के मध्य नर्तकी अपनी कला[17] प्रदर्शित करती रूपायित है। मृदंगवादक के पर्श्व में वंशीवादक है। इस प्रकार के स्थापत्यीय खण्डों से कालिंजर के मंदिर सजाये सवांरे गये थे।

गजशार्दूल—

शार्दूल सदैव सिंहवदन अंकित किये जाते थे इनका मुख कलाकार अपने अंकन में विविधता लाने हेतु कभी सिंह कभी शुक तथा कभी गज के मुख के रुप में बनाते थे। इसके नीचे तलवार लिये लघुमानव रूपायित करते थे। कालिंजर का शार्दूल[18] गज है इसके नीचे भी लघु हाथी अंकित है। शार्दूलों का अंकन मध्यकालीन भारतीय मंदिरों को सजाने संवारने हेतु किया जाता था।

संदर्भ–

(1) चित्र सं. 3 नीलकण्ठ मंदिर के सम्मुख रखा सहस्त लिंग
(2) चित्र सं. 4 के. एफ. 209
(3) चित्र सं. 5
(4) चित्र सं. 2 नीलकण्ठ मंदिर के स्तम्भ
(5) मूर्ति सं. के. एफ. 229 चित्र सं. 6
(6) शिवपुराण कोटि रूद्र संहिता अध्याय 35–36
(7) मूर्ति सं. के. एफ. 172 चित्र सं. 7
(8) चित्र सं. 8
(9) चित्र सं. 9 मूर्ति सं. के. एफ. 2
(10) चित्र सं. 10 मूर्ति सं. के. एफ. 2
(11) मूर्ति सं. के. एफ. 173 चित्र सं. 11
(12) चित्र सं. 12 मूर्ति सं. के. एफ. 231
(13) चित्र सं. 13 मूर्ति सं. के. एफ. 212
(14) चित्र सं. 14 मू. सं. के. एफ. 227
(15) चित्र सं. 15
(16) चित्र सं. 16 मूर्ति सं. के. एफ. 144
(17) चित्र सं. 17
(18) चित्र सं. 18

साहित्य :

कविता ❀ स्तुति ❀ ग्रन्थ

अध्यात्मक शौर्य एवं कला की त्रिवेणी कालिंजर में मानव ने अपने मनोभावों को शब्दों में भी व्यक्त किया था जिसे साहित्य कहते हैं। कालिंजर में साहित्य के स्रोत को ढूंढ़ने के लिये पुन: यहां के गौरवशाली शौर्यपूर्ण अतीत का आश्रय लेना होगा।

कविता

प्रतापी चन्देल नरेश विद्याधर ने मेहमूद गजनवी के कालिंजर विजय के स्वप्न को ध्वस्त कर दिया था अतत: सन्धि हुई तत्कालीन इतिहासकारों के अनुसार नन्दा (विद्याधर) ने लुगाइत-इ हिन्दुई[1] (भारतीय भाषा) में एक कविता सुल्तान की प्रशंसा एवं उसके सैनिकों की बहादुरी में भेजी थी। उच्च भारतीय परम्परा के अनुरूप विद्याधर ने युद्ध के पश्चात् अपने शत्रु की वीरता की प्रशंसा उसके सैनिकों की बहादुरी को दृष्टिगत रखते हुये की। एक पराक्रमी योद्धा ही दूसरें योद्धा के गुणों को मान दे सकता है। इससे ज्ञात होता है विद्याधर कुशल प्रशासक तथा पराक्रमी योद्धा होने के साथ ही साथ साहित्यिक अभिरूचि रखने वाला विद्वान नरेश था।

स्तुति

कालिंजर दुर्ग स्थित नीलकण्ठ मंदिर में काले शिलापट्ट पर उत्कीर्ण सम्वत् 1258 (1201 ई.) का अभिलेख रखा है। यह देवाधिदेव महादेव एवं जगतमाता पार्वती की संस्कृति पद्य में स्तुति[2] है। कहा जाता है कि चन्देल नरेश परमर्दिन देव ने त्रिपुरारि में अपने अनन्य विश्वास को व्यक्त करते हुये इस स्तुति की रचना स्वयम् की थी। यह परमर्दिन देव की शिव भक्ति के अतिरिक्त साहित्य साधना की द्योतक भी है।

ग्रन्थ

कालिंजर का अंतिम शासक वंश चौबे राजवंश था कुशल राजनीतिज्ञ तथा पराक्रमी होने के साथ ही साथ वे अत्यंत धार्मिक एवं विद्यानुरागी भी थे। इनके आश्रय में धार्मिक ग्रन्थों की हस्तलिखित[3] प्रतियां तैय्यार की जाती थी इन पर तिथि के अतिरिक्त स्थान "कालिंजर" भी अंकित किया जाता था कालिंजर का दुर्गपति

रामकृष्ण चौबे वीर विद्वान ब्राह्मण था वे स्वयम "मानदास" उपनाम से कवितायें रचते थे। रामकृष्ण चौबे ने विक्रम सम्वत् 1817 में भाद्रपद कृष्ण पक्ष अष्टमी (2 सितम्वर 1160 ई.) को अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ कृष्ण विलास की रचना की थी। बृजनाभ-कथा रुक्मिणी मंगल ❋ रास पंचाध्यायी ❋ विनय-पचीसी ❋ रामकूट पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध तथा कवित्त संग्रह ग्रन्थों की रचना कालिंजर के इस विद्वान दुर्गपति द्वारा की गयी थी। रामकृष्ण चौबे के वंशज पालदेव राज्य के नरेश नाथूराम चौबे के द्वारा विक्रम सम्वत् 1874 (1817 ई.) में रचित चित्रकूट शतमाल की पाण्डुलिपि प्राप्त हुयी है। इसी वंश के पालदेव के अंतिम नरेश चौबे शिवप्रसाद जी ने "शिवेन्द्र" उपनाम से अनेक कवितायें तथा ग्रन्थ लिखे हैं 1934 ई. में उन्होंने प्रसिद्ध ग्रन्थ विनय-चिन्तामणि[4] विशेष भक्ति भाव को अभिव्यक्ति देते हुये लिखा था।

संदर्भ

1— किताब जैनुल अखवार पृ. 80

2— ए. एस. आर. वॉल्यूम 21 पृ. 37-38

3— चन्ददास शोध संस्थान वाँदा में अनेक हस्तलिखित प्रतियां संग्रहीत हैं जिनमें "कालिंजर" लिखा है।

4— कालिंजर के चौबे राज परिवार के वंशज एवं पालदेव राज्य के उत्तराधिकारी श्री हेमराज चौबे चित्रकूट ने इस ग्रन्थ को युगल विनय में चौबे रामकृष्ण कालिंजर दुर्गपति के ग्रन्थ विनय पचीसी सहित प्रकाशित किया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

रामायण (गीता प्रेस गोरखपुर)

महाभारत (भण्डारकर ओरिएन्टल इन्स्टीट्यूट पूना)

पद्म - पुराण मोर प्रकाशन एम. सी. आप्टे आनन्दाश्रम पूना 1893

हरवंश पुराण मोर प्रकाशन आनन्दाश्रम पूना

मत्स्य पुराण नवल किशोर प्रकाशन लखनऊ 1892

भगवत पुराण

शिव पुराण गीता प्रेस गोरखपुर

परमाल रासो सम्पादक एस. एस. दास काशीनागरी प्रचारिणी

प्रबोध चन्द्रोदय   निर्णय सागर प्रेस
प्रथ्वीराज रासो   सम्पादक एम. वी. पाण्डवीय तथा एस. एस. दास बनारस
प्रबन्ध चिन्तामणि   सिन्धी जैन ग्रन्थमाला कलकत्ता 1899
विक्रमांक देवचरितम   सम्पादक ब्हूलर
इतिहास कोष   लखनऊ 1967
तवकात-ए-नासिरी
तबकात-ए-फरिश्ता
तबकात-ए-अकबरी
तबकात जैनुल अखबार
तवारीखे शेरशाही
पन्ना गजेटियर
बॉम्बे गजेटियर
जनरल ऑफ द एशियाटिक सोसायटी बेंगाल
द इण्डियन एन्टीक्वेरी भाग 17
आरक्योलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट 21
अल्टेकर ए. एस. — राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स पूना 1934
जेम्स जी. डी. — हिस्ट्री ऑफ मराठाज वॉ. सैकेन्ड देहली 1978
जॉन फेड्रिकमुलर एण्ड वी. ए. स्मिथ—द रिवैलियस रानी लन्दन 1966
मीराशी बी.वी. — कॉपर्स इन्स्क्रिप्शनम इण्डीकेरम वॉ फोर्थ 1955
मुनिलाल — अकबर . देहली 1980
मित्रा एस. के. — द अर्ली रूलर्स ऑफ खजुराहो
निगम एम.एल. — कल्चरल हिस्ट्री ऑफ बुन्देलखण्ड
पन्त पी. सी. — प्री हिस्टोरिक उत्तर प्रदेश देहली 1982
पॉगसन — ए हिस्ट्री ऑफ बुन्देलाज 1828
पाठक विशुद्धानन्द— उत्तर भारत का राजनैतिक इतिहास रिप्रिन्टेड देहली 1974
रॉय एच. सी. — डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफनॉर्थ इण्डिया
शर्मा आर. के. — कलचुरीज एन्ड देयर टाइम्स देहली 1980
स्मिथ वी. ए. — अकबर द ग्रेट मुगल देहली 1966

तिवारी गोरेलाल— बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास प्रयाग सम्वत् 1990
त्रिपाठी सोमदत्त — शक्तिपुत्र छत्रसाल
वैद्य सी. वी. — हिस्ट्री ऑफ मीडिए विल इण्डिया देहली 1979
विलियम इ. — हिस्ट्री ऑफ इण्ड़िया
हेमराज चौबे — युगल विनय चित्रकूट सम्वत् 2042
त्रिवेदी एस. डी. — बुन्देलखण्ड का पुरातत्व झाँसी 1984

चित्रावली

1. नील-कण्ठ मंदिर

2. नन्दिकेश्वर-शिवगण

3. सहस्त्रलिंग
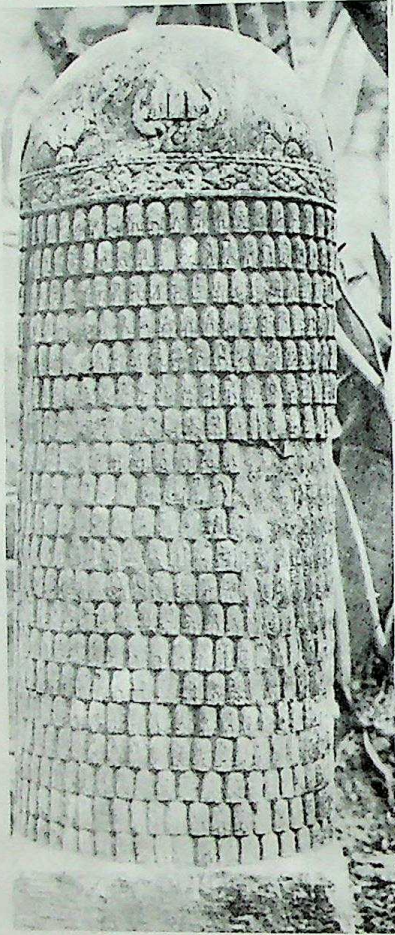
4. मुखलिंग भक्त

5. घतुर्मुख लिंग
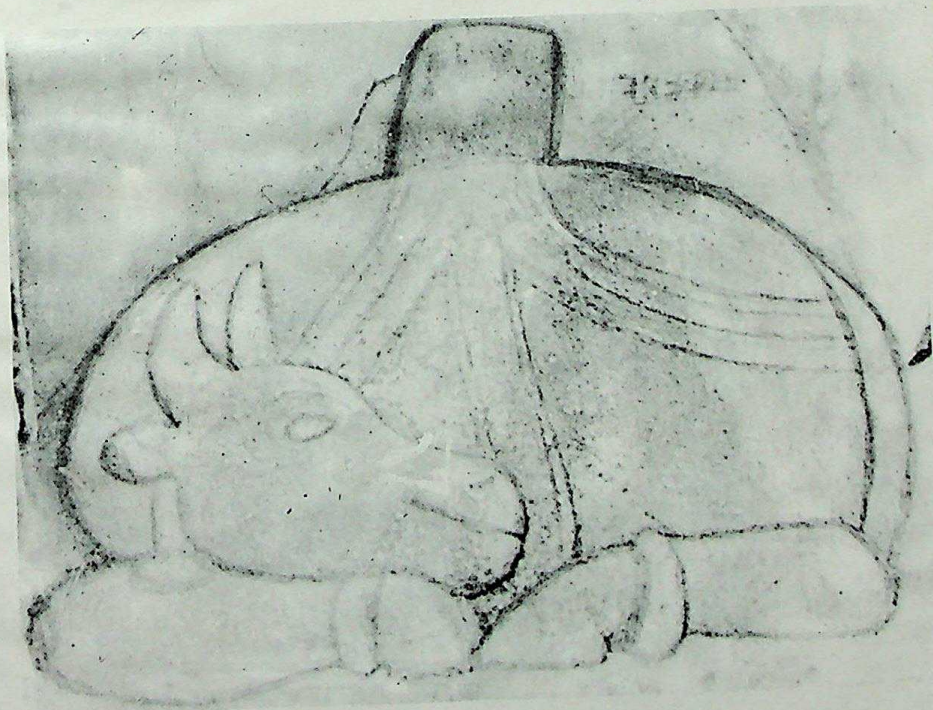
6. वृष भारूढ़ लिंग

7. नृत्य भैरव

8. वटुक भैरव
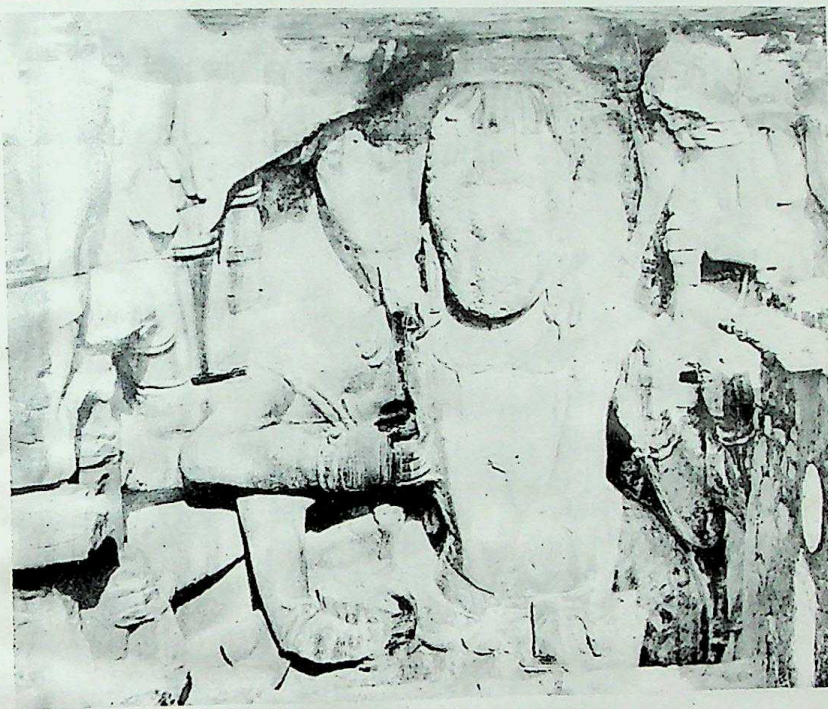
9. काल भैरव
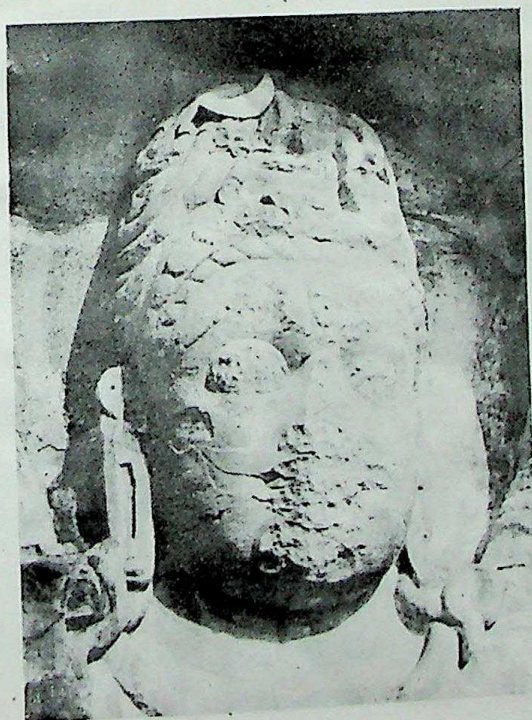
10. काल भैरव मुखमण्डल

11. चामुण्डा

12. गरुणारूढ़ विष्णु

13. उमामहेश्वर

14. गणेश
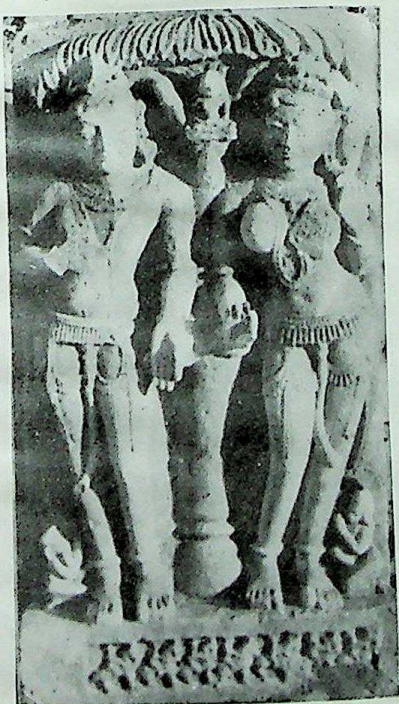
15. युगल

16. योगी

17. नृत्य संगीत

18. गज शार्दूल